पत्राचार पाठ्यक्रम
माध्यमिक शिक्षा मण्डल, मध्यप्रदेश, भोपाल
(द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित)
डिप्लोमा इन एज्युकेशन द्वितीय वर्ष
छठवां प्रश्न पत्र
विषय – शिक्षा मनोविज्ञान

इकाई क्र.	इकाई का नाम	अंक	कालखण्ड
1	शिक्षा मनोविज्ञान	10	20
2	सीखना या अधिगम	7	14
3	अधिगम सीखने को प्रभावित करने वाले कारक अवधान व रूचि	7	14
4	अधिगम में अभिप्रेरणा	7	14
5	स्मृति व विस्मृति	7	14
6	व्यक्तित्व एवं व्यक्तित्व मापन	8	16
7	बुद्धि व बुद्धि मापन	8	16
8	सृजनात्मकता	5	12
9	अभिक्षमता एवं अभिक्षमता मापन	6	12
10	(अ) विशिष्ट बालकों का मानोविज्ञान एवं उनकी शिक्षा (ब) निर्देशन एवं परामर्श	10	18
	सैद्धांतिक	**75**	**150**
	सत्रगत कार्य	**25**	**–**
	कुल योग	**100**	**150**

डी.एड. द्वितीय वर्ष
छठवां प्रश्न पत्र
विषय – शिक्षा मनोविज्ञान

विषयांश इकाईवार –

इकाई 1. शिक्षा मनोविज्ञान

1.1 मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना
1.2 मनोविज्ञान की परिभाषा, स्वरूप एवं शाखाएं
1.3 शिक्षा और मनोविज्ञान का संबंध
1.4 शिक्षा मनोविज्ञान–परिभाषा एवं आवश्यकता
1.5 शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र
1.6 शिक्षा मनोविज्ञान की विधियां
अ– आत्मनिष्ठ – अन्तर्दर्शन,
ब– वस्तुनिष्ठ – निरीक्षण, जीवन इतिहास (केस स्टडी),
प्रश्नावली, साक्षात्कार, अनुसूची, प्रयोग विधि, निर्धारण मापनी, मनोचिकित्सीय विधि

इकाई 2. सीखना या अधिगम

2.1 अर्थ, नियम एवं सिद्धांत– पावलाव, कोहलर, थार्नडाइक
2.2 अ– प्रयास एवं भूल सिद्धांत
ब– मेज (Maize) उपकरण के प्रयोग द्वारा सिद्धांत का सत्यापन
2.3 सीखने का स्थानांतरण
2.4 सीखने का प्रकार
2.5 शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सीखने का महत्व

इकाई 3. सीखने को प्रभावित करने वाले कारक – अवधान एवं रूचि

3.1 अवधान, अर्थ, विशेषताएं, प्रकार
3.2 अवधान भंग होने के कारण और उपाय
3.3 अवधान का विस्तार ज्ञात करने हेतु प्रयोग
3.4 रूचि, अर्थ, विशेषताएं प्रकार
3.5 सीखने में रूचि बनाए रखने के उपाय
3.6 रूचि ज्ञात करने हेतु परीक्षण
अ– शैक्षिक रूचि प्रपत्र – कुलश्रेष्ठ

इकाई 4. अधिगम में अभिप्रेरणा

4.1 अर्थ एवं प्रकार
4.2 अभिप्रेरणा के सिद्धांत
4.3 अभिप्रेरणा का सीखने में महत्व
4.4 अभिप्रेरणा की विधियां

इकाई 5. स्मृति व विस्मृति

5.1 स्मृति का अर्थ एवं उसके अवयव
5.2 अच्छी स्मृति के लक्षण एवं प्रयोग तथा उन्नति के उपाय
5.3 विस्मृति का कारण, महत्व
5.4 विस्मृति कम करने का उपाय

इकाई 6. व्यक्तित्व एवं व्यक्तित्व मापन

6.1 अर्थ एवं प्रकार
6.2 संतुलित व्यक्तित्व की विशेषताएं
6.3 प्रभावित करने वाले कारक
6.4 व्यक्तित्व मापन की विधियां
6.5 वंशानुक्रम एवं वातावरण – अर्थ और महत्व

इकाई 7. बुद्धि एवं बुद्धि मापन

7.1 परिचय, परिभाषा एवं सिद्धांत
7.2 बुद्धि–लब्धि एवं उसका मापन
7.3 बुद्धि परीक्षण के प्रकार
7.4 बुद्धि परीक्षण की उपयोगिता

इकाई 8. अभिक्षमता एवं अभिक्षमता मापन

8.1 अर्थ, परिभाषा एवं महत्व
8.2 मापन (अभिक्षमता परीक्षण द्वारा)
8.3 अभिक्षमता परीक्षणों के व्यावहारिक उपयोग

इकाई 9. सृजनात्मकता

9.1 अर्थ एवं परिभाषा
9.2 सृजनात्मक बालक की पहचान
9.3 शिक्षा में सृजनात्मकता की उपयोगिता
9.4 सृजनात्मकता के परीक्षण

इकाई 10. (अ) विशिष्ट बालकों का मनोविज्ञान एवं उनकी शिक्षा

10(अ).1 प्रतिभाशाली बालक
10(अ).2 पिछड़े बालक
10(अ).3 निःशक्त बालक
10(अ).4 समस्यात्मक बालक
10(अ).5 बाल अपराध– कारण एवं प्रकार

(ब) निर्देशन एवं परामर्श

10(ब).1 अर्थ, परिभाषा, प्रकार, महत्व
10(ब).2 विशिष्ट बालकों हेतु निर्देशन एवं परामर्श की आवश्यकता एवं महत्व
10(ब).3 शैक्षिक निर्देशन की उपयोगिता

संदर्भ ग्रन्थ –

1. शिक्षा मनोविज्ञान – सुरेश भटनागर
2. शिक्षा मनोविज्ञान – पी.डी. पाठक
3. शिक्षा मनोविज्ञान – एस.एस. माथुर
4. शिक्षा मनोविज्ञान – रामनाथ शर्मा
5. Educational Psychology – O' kelly

पत्राचार पाठ्यक्रम
माध्यमिक शिक्षा मण्डल, मध्यप्रदेश, भोपाल
(द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित)
डिप्लोमा इन एज्युकेशन
विषय – शिक्षा मनोविज्ञान
द्वितीय वर्ष
प्रश्न पत्र – छटवां

इकाई –1. शिक्षा मनोविज्ञान। **आवंटित अंक 10 अंक**

विषयांश –

1.1 मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना।
1.2 मनोविज्ञान की परिभाषा, स्वरूप एवं शाखाएं।
1.3 शिक्षा और मनोविज्ञान का संबंध।
1.4 शिक्षा मनोविज्ञान– परिभाषा एवं आवश्यकता।
1.5 शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र।
1.6 शिक्षा मनोविज्ञान की विधियां।

प्रिय छात्राध्यापक!

प्रस्तुत इकाई में हम मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना, परिभाषा, स्वरूप एवं शाखाएं, शिक्षा और मनोविज्ञान का संबंध, क्षेत्र एव विधियों का अध्ययन करेंगे।

ज्ञान विज्ञान तथा सांस्कृतिक कार्यों की प्राचीनतम धरोहर भारत में है। प्राचीनतम शिक्षा तथा शिक्षण व्यवस्था का जन्म भारत में ही हुआ। प्राचीन ग्रंथों में शिक्षा तथा मनोविज्ञान के अनेक तत्वों का वर्णन मिलता है। पुराणों, स्मृतियों, दर्शन में मनोविज्ञान पर आधारित अनेक शिक्षण विधियों का उल्लेख है। मानव स्वभाव को अभिव्यक्त करने वाले संवेग तथा मूल प्रवृत्तियों का विस्तार से प्राचीन ग्रंथों में पूर्ण व्याख्या के साथ वर्णन किया गया है। प्राचीन काल में आचार्य, मानव के व्यवहार की समस्याओं से पूर्ण परिचित थे। शिक्षा के द्वारा वे उन व्यावहारिक समस्याओं को हल करते थे।

यह सच है कि शिक्षा, मनोविज्ञान से कभी पृथक नहीं रही है। मनोविज्ञान चाहे दर्शन के रूप रहा हो, वह शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति का विकास करने में सहायक रहा है।

1.1 मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना :–

भारतीय मनोविज्ञान का इतिहास अति प्राचीन हैं। भारतीय परम्परा में दर्शन, मनेाविज्ञान और शिक्षा को अलग कर विवेचन करने की चेष्टा नहीं की गई। यह सदैव ज्ञान के स्थानान्तरण की त्रिवेणी के रूप में प्रवाहित होती रही है।

भारतीय परम्परा में शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय जीवन के सभी चेतन–अवचेतन व्यवहार एवं चेष्टाएँ हैं। भारतीय संदर्भ में मनेाविज्ञान केवल मन और व्यवहार तक सीमित न रहकर मन से परे आत्मतत्व तथा सभी प्राणी जगत के व्यवहार का अध्ययन और विकास समाहित किए हुए हैं। वेद, उपनिषद, श्री मद्भगवत गीता आदि सभी ग्रन्थ मनोविज्ञान के प्रमाणित ग्रन्थ हैं।

हिन्दू मनोविज्ञान का मूल आधार वेद ही हैं। वेदों मे इसे आध्यात्म विद्या भी कहा गया है, क्योंकि यह ज्ञान आध्यात्मिक विकास और दिव्य जीवनयापन का सशक्त साधन है।

वेदों का अन्तिम भाग उपनिषद् हैं, जिसमें पुरूष जो अनन्त शक्ति है, सर्वत्र व्याप्त हैं, संसार का रचियता और उस पर काल का स्थायी प्रभाव नहीं पड़ता हैं। गीता में अनेक ऐसी बातें हैं जो उपनिषदों में भी मिलती हैं। गीता व्यवहारिक जीवन दर्शन पर बल देती है।

भारतीय मनोविज्ञान में जीवन के अन्तः और बाह्य दोनों ही पक्षों की महत्ता हैं। अन्तः पक्ष की अध्ययन प्रणाली में व्यक्ति निष्ठता (Subjectivity) और बाह्य पक्ष की अध्ययन विधि में वस्तुनिष्ठता (Objectivity) रहती है। प्रायः यहाँ व्यक्तिनिष्ठता भी उतनी ही प्रमाणिक रहती है जितनी की वस्तुनिष्ठता होती है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनोविज्ञान प्राणी के व्यवहार तथा मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन हैं। दूसरे शब्दों में मनोविज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो क्रमबद्ध (Systematically) रूप से प्रेक्षणीय व्यवहार (Observable Behaviour) का अध्ययन करना है तथा प्राणी के भीतर के मानसिक एवं दैहिक (Mental and physical) प्रक्रियाओं यथा चिन्तन भाव एवं घटनाओं से उनका सम्बन्ध जोड़कर अध्ययन करना है।

मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना की विशेषताएं :–

1. आत्म तत्व को पहचानना (Identification of self)
2. आध्यात्मिक मनोविज्ञान (Spiritual Psychology)
3. योग का महत्व (Importance of Yoga)
4. ध्यान का महत्व (Importance of Meditation)
5. रहस्यवाद का मनोविज्ञान (Psychology of Mystirism)
6. प्राकृतिक व्यवस्था का समावेश (Inclusion of natural system)
7. गीता में मनोविज्ञान (Psychology in Geeta)

8. वेदों में मनोविज्ञान (Psychology of Vedas)

9. शारीरिक एवं मानसिक विकास की अवधारणा (Concept of Physical and mental development)

उपरोक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय संकल्पना में, मनोविज्ञान में उन सभी तत्वों को सम्मिलित किया गया है, जो कि वर्तमान समय में विद्यमान है। आज का मनोविज्ञान प्राचीन मनोविज्ञान की ही देन है। सामान्यतः वर्तमान एवं भारतीय संकल्पना में मनोविज्ञान में एक अन्तर पाया जाता है। मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना में रहस्यवाद समाहित था वहीं वर्तमान मनोविज्ञान में रहस्यवाद का कोई स्थान नहीं है।

वर्तमान समय के मनोविज्ञान पर विचार किया जाये तो यह मनोविज्ञान प्राचीनकाल के मनोविज्ञान की ही देन माना जा सकता है। प्राचीनकाल के मनोविज्ञान में वे सभी मनोवैज्ञानिक तथ्य समाहित हैं, जो कि आज के मनोविज्ञान में समाहित हैं। आज बालक के अवधान को केन्द्रित करने के लिए कक्षा में अनेक प्रकार के उपाय किये जाते हैं परन्तु प्राचीनकाल में छात्रों का अवधान केन्द्रित करने के लिए उनको योग की शिक्षा प्राथमिक स्तर पर दी जाती थी।

वर्तमान मनोविज्ञान में संवेगात्मक स्थिरता के उपाय के रूप में अनेक प्रकार के व्यवहारिक एवं शैक्षिक उपाय बताये जाते हैं परन्तु मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना में योग के आधार पर ही मनोवृत्ति को स्थिर करना सिखाया जाता था जिससे कि स्वाभाविक रूप से छात्र का मन स्थिर हो जाय तथा उसमें संवेगात्मक अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न न हो।

उक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि मनोविज्ञान में उन सभी तथ्यों को आधार माना गया है, जो कि मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना में विद्यमान है।

1.2 मनोविज्ञान की परिभाषाएं :–

मनोविज्ञान का अर्थ – ''मन के विज्ञान'' को मनोविज्ञान कहा जाता हैं। भारतीय वाड्मय में उसकी प्रकृति पश्चिम के मनोविज्ञान के समान शैक्षणिक (Educational) नहीं होकर आध्यामित्क (Spiritual) हैं। अतः उसे ''मन का ज्ञान'' कहना अधिक सार्थक प्रतीत होता है। प्राचीन भारत में मनोविज्ञान को आत्मा के विज्ञान और चेतना के विज्ञान के रूप में लिया जाता है। भारतीय मनीषी आध्यात्मिक साधना, जिसमें ध्यान, समाधि और योग भी सम्मिलित था, के द्वारा जो अनुभव एवं अनुभूतियां प्राप्त करते थे उनके आधार पर मनोवैज्ञानिक समस्याओं का समाधान भी तलाशा जाता था।

यूं तो पाश्चात्य मनोविज्ञान का उद्भव भी दर्शन से हुआ हैं। मनोवैज्ञानिक मन के अनुसार ''मनोविज्ञान, व्यवहार और अनुभूति का एक निश्चित विज्ञान है जिसमें व्यवहार को अनुभूति के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है''।

मनोविज्ञान की विकास की लम्बी यात्रा के दौरान मनोवैज्ञानिकों एवं मनीषियों ने चिंतन मनन किया तथा मनोविज्ञान के स्वरूप को निर्धारित किया। अनेक मनोवैज्ञानिकों ने मनोविज्ञान को निम्नानुसार परिभाषित किया है।

1. **बोरिंग लैगफेल्ड व वेल्ड–** ''मनोविज्ञान मानव प्रकृति का अध्ययन है।''
2. **गैरिसत व अन्य–** ''मनोविज्ञान का संबंध प्रत्यक्ष मानव व्यवहार से है।''
3. **स्किनर–** ''मनोविज्ञान व्यवहार और अनुभव का विज्ञान है।''
4. **मन–** ''आधुनिक मनोविज्ञान का संबधं व्यवहार की वैज्ञानिक खोज से है।''
5. **पिल्सबरी–** ''मनोविज्ञान की सबसे संतोषजनक परिभाषा मानव व्यवहार के विज्ञान के रूप में की जा सकती है।''
6. **क्रो एवं क्रो–** ''मनोविज्ञान मानव व्यवहार और मानव संबंधों का अध्ययन है।''
7. **वुडवर्थ–** ''मनोविज्ञान वातावरण के संबंध में व्यक्तियों की क्रियाओं का वैज्ञानिक अध्ययन है।''
8. **जेम्स–** ''मनोविज्ञान की सर्वोत्तम परिभाषा चेतना के वर्णन और व्याख्या के रूप में की जा सकती है।''

मनोविज्ञान की शाखाएंः–

मनोविज्ञान एक प्रगतिशील विज्ञान है। शैशवकाल में होते हएु भी इस विज्ञान ने प्रयोग के क्षेत्र में अद्वितीय उन्नति की है। मनोविज्ञान को दर्शन का अंग समझा जाता है और दर्शानिकों द्वारा ही यह विज्ञान पढ़ाया जाता था। आज देश देशांतर में मनोविज्ञान की बड़ी–बड़ी प्रयोगशालएं स्थापित हो चुकी है और बाल मनोविज्ञान, पशु मनोविज्ञान, चिकित्सा मनोविज्ञान अर्थात मनोविज्ञान के अंग–अंग पर खोज या प्रयोग जारी है। कुछ ही वर्षों के समय में इस विज्ञान के अनेक विभाग हो चुके है और इन विभागों की भी अनेक शाखाएं उत्पन्न हो चुकी है। यों तो मनोविज्ञान की बहुत सी शाखाएं है किन्तु उनमें से मुख्य निम्नलिखित हैः–

1. सामान्य मनोविज्ञान।
2. पशु मनोविज्ञान।
3. तुलनात्मक मनोविज्ञान।
4. वैयक्तिक मनोविज्ञान।
5. सामाजिक मनोविज्ञान।
6. मनोविज्ञान अथवा विश्लेषण मनोविज्ञान।
7. असामान्य मनोविज्ञान।

8. चिकित्सा मनोविज्ञान।
9. बाल मनोविज्ञान।
10. उद्योग मनोविज्ञान।
11. वाणिज्य मनोविज्ञान।
12. शिक्षा मनोविज्ञान।

1.3 शिक्षा और मनोविज्ञान का संबंध :–

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक स्किनर के अनुसार शिक्षा मनोविज्ञान का आरम्भ अरस्तु के समय से माना जा सकता है। शिक्षा मनोविज्ञान का सम्बन्ध सीखने एवं सीखने की विधियों अर्थात पढ़ाने से है।

शिक्षा तथा मनोविज्ञान ज्ञान की दो स्पष्ट शाखाएं है, परंतु इन दोनो का परस्पर घनिष्ठ संबंध हैं आधुनिक शिक्षा का आधार मनोविज्ञान है। बच्चे को उसकी रूचियों, रूझानों, सम्भावनाओं तथा व्यक्तित्व का ध्यानपूर्वक अध्ययन करके शिक्षा दी जाती है। आज शिक्षा तथा मनोविज्ञान एक दूसरे के पूरक है। **स्किनर का मत है** कि ''शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा का एक आवश्यक तत्व है। इसकी सहायता के बिना शिक्षा की गुत्थी सुलझाई नहीं जा सकती। शिक्षा तथा मनोविज्ञान दोनों का संबंध व्यवहार के साथ है। मनोविज्ञान की खोजों की शिक्षा के दूसरे पहलुओं पर गहरी छाप है।''

शिक्षा तथा मनोविज्ञान सिद्धांत तथा व्यवहार का समन्वय है, शिक्षा तथा मनोविज्ञान का पारस्परिक संबंध का ज्ञान मानव के समन्वित संतुलित विकास के लिये आवश्यक है। शिक्षा के समान कार्य, मनोविज्ञान क सिद्धांतों पर आधारित है। क्रो एण्ड क्रो के अनुसार ''मनोविज्ञान, वातावरण के सम्पर्क में होने वाले मानव व्यवहारों का विज्ञान हैं'' मनोविज्ञान सीखने से संबंधित मानव विकास की व्याख्या करता है। शिक्षा, सीखने की प्रक्रिया को करने की चेष्टा प्रदान करती है। शिक्षा मनोविज्ञान सीखने के क्यों और कब से संबंधित है।''

शिक्षा और मनोविज्ञान को जोड़ने वाली कड़ी है ''मानव व्यवहार''। इस संबंध में दो विद्वानों के विचार दृष्टव्य है :–

1. **ब्राउन–** ''शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है।''
2. **पिल्सबरी–** ''मनोविज्ञान मानव व्यवहार का विज्ञान है।''

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि शिक्षा और मनोविज्ञान दोनों का संबंध मानव व्यवहार से है। शिक्षा मानव व्यवहार में परिवर्तन करके उसे उत्तम बनाती है। मनोविज्ञान मानव व्यवहार का अध्ययन करता है। इस प्रकार शिक्षा और मनोविज्ञान के संबंध होना स्वाभाविक है पर इस संबंध में मनोविज्ञान को आधार प्रदान करता है। शिक्षा को अपने प्रत्येक कार्य के लिए मनोविज्ञान की स्वीकृति प्राप्त करनी पड़ती है। बी.एन. झा ने ठीक ही लिखा है– ''शिक्षा जो कुछ करती है और जिस प्रकार वह किया जाता है उसके लिये इसे मनोवैज्ञानिक खोजों पर निर्भर होना पड़ता है।''

मनोविज्ञान को यह स्थान इसलिए प्राप्त हुआ है क्योंकि उसने शिक्षा के सब क्षेत्रों को प्रभावित करके उनमें क्रांतिकारी परिवर्तन कर दिया है। इस संदर्भ में रायन के ये सारगर्भित वाक्य उल्लेखनीय है– ''आधुनिक समय के अनेक विद्यालयों में हम भिन्नता और संघर्ष का वातावरण पाते है। अब इनमें परम्परागत, औपचारिकता, मजबूर, मौन, तनाव और दण्ड की अधिकता दर्शित नहीं होती है।'' यह सब शिक्षा मनोविज्ञान के उपयोग के कारण संभव हुआ है।

मनोविज्ञान का शिक्षा के साथ संबंध :– संक्षिप्त वर्णन

1. **मनोविज्ञान तथा शिक्षा के उद्देश्य –** मनोविज्ञान के द्वारा यह ज्ञात किया जा सकता है कि शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है अथवा नहीं। शिक्षक ने अपने उद्देश्य में कितनी सफलता प्राप्त की है यह भी मनोविज्ञान के द्वारा जाना जा सकता है।
2. **मनोविज्ञान तथा पाठ्यक्रम –** मनोविज्ञान ने बालक के सर्वागींण विकास में पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं को महत्वपूर्ण बनाया है। इसीलिये विद्यालयों में खेलकूद, सांस्कृतिक कार्यक्रम आदि की विशेष रूप से व्यवस्था की जाती है।
3. **मनोविज्ञान तथा पाठ्य पुस्तकें –** पाठ्य पुस्तकों का निर्माण बालक की आयु, रूचियों और मानसिक योग्यताओं को ध्यान में रखकर करना चाहिये।
4. **मनोविज्ञान तथा समय सारणी –** शिक्षा में मनोविज्ञान द्वारा दिया जाने वाला मुख्य सिद्धान्त है कि नवीन ज्ञान का विकास पूर्व ज्ञान के आधार पर किया जाना चाहिये।
5. **मनोविज्ञान तथा शिक्षा विधियां –** मनोविज्ञान के द्वारा शिक्षण विधियों में बालक के स्वयं सीखने पर बल दिया गया। इस उद्देश्य से 'करके सीखना', खेल द्वारा सीखना, रेड़ियो पर्यटन, चलचित्र आदि को शिक्षण विधियों में स्थान दिया गया।
6. **मनोविज्ञान तथा अनुशासन –** मनोविज्ञान द्वारा प्रेम, प्रशंसा और सहानुभूति को अनुशासन के लिये एक अच्छा आधार माना है।
7. **मनोविज्ञान तथा अनुसंधान –** मनोविज्ञान ने सीखने की प्रक्रिया के सम्बन्ध में खोज करके अनेक अच्छे नियम बनायें हैं। इनका प्रयोग करने से बालक कम समय में और अधिक अच्छी प्रकार से सीख सकता है।
8. **मनोविज्ञान तथा परीक्षायें –** मनोविज्ञान द्वारा बुद्धि परीक्षा, व्यक्तित्व परीक्षा तथा वस्तुनिष्ठ परीक्षा जैसी नई विधियों को मूल्यांकन के लिये चयनित किया गया है।
9. **मनोविज्ञान तथा अध्यापक** – शिक्षा में तीन प्रकार के सम्बन्ध होते हैं – बालक तथा शिक्षक का सम्बन्ध, बालक और समाज का सम्बन्ध तथा बालक और विषय का सम्बन्ध। शिक्षा में सफलता तभी मिल सकती है जब इन तीनों का सम्बन्ध उचित हो।

मनोविज्ञान का शिक्षा में योगदान :–

1. बालक का महत्व।
2. बालकों की विभिन्न अवस्थाओं का महत्व।
3. बालकों की रूचियों व मूल प्रवृत्तियों का महत्व।
4. बालकों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं का महत्व।
5. पाठ्यक्रम में सुधार।
6. पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं पर बल।
7. सीखने की प्रक्रिया में उन्नति।
8. मूल्यांकन की नई विधियां।
9. शिक्षा के उद्देश्य की प्राप्ति व सफलता।
10. नये ज्ञान का आधारपूर्ण ज्ञान।

1.4 शिक्षा मनोविज्ञान– परिभाषा एवं आवश्यकता :–

शिक्षा मनोविज्ञान वह विधायक विज्ञान है जो शिक्षा की समस्याओं का विवेचन विश्लेषण एवं समाधान करता है।

शिक्षा मनोविज्ञान से कभी पृथक नहीं रही है। मनोविज्ञान चाहे दर्शन के रूप में रहा हो, उसने शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति का विकास करने में सहायता की है।

शिक्षा मनोविज्ञान के आरंभ के विषय में लेखकों में कुछ मतभेद है। कोलेसनिक ने इस विज्ञान का आरंभ ईसा पूर्व पांचवी शताब्दी के यूनानी दार्शनिको से माना है, उनमें प्लेटो को भी स्थान दिया है। कोलेसनिक के शब्दों में– ''मनोविज्ञान और शिक्षा के सर्वप्रथम व्यवस्थित सिद्धांतों में एक सिद्धांत प्लेटों का भी था।''

कोलेसनिक के विपरीत स्किनर ने शिक्षा मनोविज्ञान का आरंभ प्लेटो के शिष्य अरस्तु के समय से मानते हुए लिखा है ''शिक्षा मनोविज्ञान का आरंभ अरस्तु के समय से माना जा सकता है। पर शिक्षा मनोविज्ञान की उत्पत्ति यूरोप में पेस्त्रला जी, हरबर्ट और फ्राबेल के कार्यों से हुई जिन्होंने शिक्षा को मनोवैज्ञानिक बनाने का प्रयास किया।'' स्किनर के शब्दों में ''शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान की वह शाखा है जिसका संबंध पढ़ने व सीखने से है।''

शिक्षा मनोविज्ञान का अर्थ :–

शिक्षा मनोविज्ञान, मनोविज्ञान के सिद्धांतों का शिक्षा के क्षेत्र में प्रयोग है। स्किनर के शब्दों में ''शिक्षा मनोविज्ञान उन खोजों को शैक्षिक परिस्थितियों में प्रयोग करता है जो कि विशेषतया मानव, प्राणियों के अनुभव और व्यवहार से संबंधित है।''

शिक्षा मनोविज्ञान दो शब्दों के योग से बना है – 'शिक्षा' और 'मनोविज्ञान'। अतः इसका शाब्दिक अर्थ है – शिक्षा संबंधी मनोविज्ञान। दूसरे शब्दों में, यह मनोविज्ञान का व्यावहारिक रूप है और शिक्षा की प्रक्रिया में मानव व्यवहार का अध्ययन करने वाला विज्ञान है। अतः हम स्किनर के शब्दों में कह सकते है ''शिक्षा मनोविज्ञान अपना अर्थ शिक्षा से, जो सामाजिक प्रक्रिया है और मनोविज्ञान से, जो व्यवहार संबंधी विज्ञान है, ग्रहण करता है।''

शिक्षा मनोविज्ञान के अर्थ का विश्लेषण करने के लिए स्किनर ने अधोलिखित तथ्यों की ओर संकेत किया है:–

1. शिक्षा मनोविज्ञान का केन्द्र, मानव व्यवहार है।
2. शिक्षा मनोविज्ञान खोज और निरीक्षण से प्राप्त किए गए तथ्यों का संग्रह है।
3. शिक्षा मनोविज्ञान में संग्रहीत ज्ञान को सिद्धांतों का रूप प्रदान किया जा सकता है।
4. शिक्षा मनोविज्ञान ने शिक्षा की समस्याओं का समाधान करने के लिए अपनी स्वयं की पद्धतियों का प्रतिपादन किया है।
5. शिक्षा मनोविज्ञान के सिद्धांत और पद्धतियां शैक्षिक सिद्धांतों और प्रयोगों को आधार प्रदान करते है।

शिक्षा मनोविज्ञान की परिभाषाएं :–

शिक्षा मनोविज्ञान के सिद्धांतों का शिक्षा में प्रयोग ही नहीं करता अपितु शिक्षा की समस्याओं को हल करने में योग देना है। इसलिए शिक्षा विदो ने शिक्षा की समस्याओं के अध्ययन, विश्लेषण, विवेचन तथा समाधान के लिये इसकी परिभाषाएं इस प्रकार दी है।

1. **स्किनर –** शिक्षा मनोविज्ञान के अन्तर्गत शिक्षा से संबंधित संपूर्ण व्यवहार और व्यक्तित्व आ जाता है।
2. **क्रो एण्ड क्रो –** शिक्षा मनोविज्ञान व्यक्ति के जन्म से वृद्धावस्था तक सीखने के अनुभवों का वर्णन और व्याख्या करता है।
3. **सॉरे व टेलफोर्ड –** शिक्षा मनोविज्ञान का मुख्य संबंध सीखने से है। वह मनोविज्ञान का वह अंग है जो शिक्षा के मनोवैज्ञानिक पहलुओं की वैज्ञानिक खोज से विशेष रूप से संबंधित है।

आवश्यकता :–

कैली के अनुसार – कैली ने शिक्षा मनोविज्ञान की आवश्यकता को निम्नानुसार बताया है:–

1. बालक के स्वभाव का ज्ञान प्रदान करने हेतु।
2. बालक के वृद्धि और विकास हेतु।
3. बालक को अपने वातावरण से सामंजस्य स्थापित करने के लिए।

4. शिक्षा के स्वरूप, उद्देश्यों और प्रयोजनों से परिचित करना।
5. सीखने और सिखाने के सिद्धांतों और विधियों से अवगत कराना।
6. संवेगों के नियंत्रण और शैक्षिक महत्व का अध्ययन।
7. चरित्र निर्माण की विधियों और सिद्धांतों से अवगत कराना।
8. विद्यालय में पढ़ाये जाने वाले विषयों में छात्र की योग्यताओं का माप करने की विधियों में प्रशिक्षण देना।
9. शिक्षा मनोविज्ञान के तथ्यों और सिद्धांतों की जानकारी के लिए प्रयोग की जाने वाली वैज्ञानिक विधियों का ज्ञान प्रदान करना।

1.5 शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्रः–

हमने यह देखा कि विभिन्न लेखकों ने शिक्षा मनोविज्ञान की भिन्न–भिन्न परिभाषाएं दी है। इसलिए शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र के बारे में निश्चित तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा मनोवैज्ञानिक एक नया तथा पनपता विज्ञान है। इसके क्षेत्र अनिश्चित है और धारणाएं गुप्त है। इसके क्षेत्रों में अभी बहुत सी खोज हो रही है और संभव है कि शिक्षा मनोविज्ञान की नई धारणाएं, नियम और सिद्धांत प्राप्त हो जाये। इसका भाव यह है कि शिक्षा मनोविज्ञान का क्षेत्र और समस्याएं अनिश्चित तथा परिवर्तनशील है। चाहे कुछ भी हो निम्नलिखित क्षेत्र या समस्याओं को शिक्षा मनोविज्ञान के कार्य क्षेत्र में शामिल किया जा सकता है। क्रो एण्ड क्रो– ''शिक्षा मनोविज्ञान की विषय सामग्री का संबंध सीखने को प्रभावित करने वाली दशाओं से है।''

1. व्यवहार की समस्या।
2. व्यक्तिगत विभिन्नताओं की समस्या।
3. विकास की अवस्थाएं।
4. बच्चों का अध्ययन।
5. सीखने की क्रियाओं का अध्ययन।
6. व्यक्तित्व तथा बुद्धि।
7. नाप तथा मूल्यांकन।
8. निर्देश तथा परामर्श।

1.6 शिक्षा मनोविज्ञान की विधियां :–

शिक्षा मनोविज्ञान को व्यवहारिक विज्ञान की श्रेणी में रखा जाने लगा है। विज्ञान होने के कारण इसके अध्ययन में भी अनेक विधियों का विकास हुआ। ये विधियां वैज्ञानिक हैं। जार्ज ए लुण्डबर्ग के शब्दों में ''सामाजिक वैज्ञानिकों में यह विश्वास पूर्ण हो गया है कि उनके सामने जो समस्याऐं है उनको

हल करने के लिए सामाजिक घटनाओं के निष्पक्ष एवं व्यवस्थित निरीक्षण, सत्यापन, वर्गीकरण तथा विश्लेषण का प्रयोग करना होगा। ठोस एवं सफल होने क कारण ऐसे दृष्टिकोण को वैज्ञानिक पद्धति कहा जाता है।''

विधियाँ :–

शिक्षा मनोविज्ञान में अध्ययन और अनुसंधान के लिए सामान्य रूप से जिन विधियों का प्रयोग किया जाता है उनको दो भागों में विभाजित किया जा सकता हैः– चार्ट रूप में प्रस्तुत

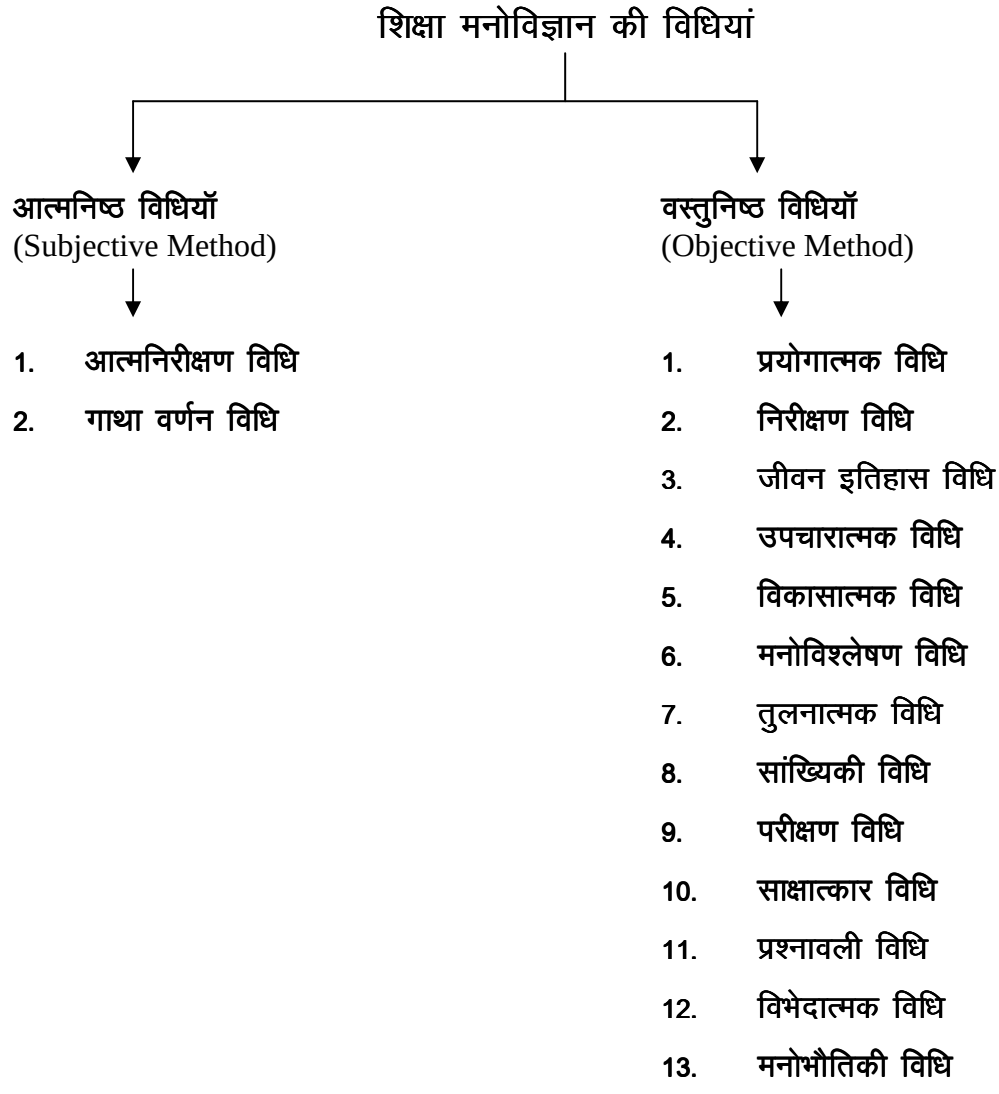

इनमें से कुछ प्रमुख विधियों का निम्नानुसर वर्णन किया गया है :–

1. आत्म निरीक्षण विधि (अर्न्तदर्शन विधि) :–

आत्म निरीक्षण विधि को अर्न्तदर्शन, अन्तर्निरीक्षण विधि भी कहते है। स्टाउट के अनुसार ''अपना मानसिक क्रियाओं का क्रमबद्ध अध्ययन ही अन्तर्निरीक्षण कहलाता है।''

वुडवर्थ ने इस विधि को आत्मनिरीक्षण कहा है। इस विधि में व्यक्ति की मानसिक क्रियाएं आत्मगत होती हे। आत्मगत होने के कारण आत्मनिरीक्षण या अन्तर्दर्शन विधि अधिक उपयोगी होती हे।

लॉक के अनुसार – मस्तिष्क द्वारा अपनी स्वयं की क्रियाओं का निरीक्षण।''

1. **परिचय :–** पूर्वकाल के मनोवैज्ञानिक अपनी मस्तिष्क क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिये इसी विधि पर निर्भर थे। वे इसका प्रयोग अपने अनुभवों का पुनः स्मरण और भावनाओं का मूल्यांकन करने के लिये करते थे। वे सुख, दुख, क्रोध और शान्ति, घृणा और प्रेम के समय अपनी भावनाओं और मानसिक दशाओं का निरीक्षण करके उनका वर्णन करते थे।
2. **अर्थ :–** अन्तर्दर्शन का अर्थ है– ''अपने आप में देखना।'' इसकी व्याख्या करते हुए बी.एन. झा ने लिखा है ''आत्मनिरीक्षण अपने स्वयं के मन का निरीक्षण करने की प्रक्रिया है। यह एक प्रकार का आत्मनिरीक्षण है जिसमें हम किसी मानसिक क्रिया के समय अपने मन में उत्पन्न होने वाली स्वयं की भावनाओं और सब प्रकार की प्रतिक्रियाओं का निरीक्षण, विश्लेषण और वर्णन करते है।''
3. **गुण– मनोविज्ञान के ज्ञान में वृद्धि :–** डगलस व हालैण्ड के अनुसार – ''मनोविज्ञान ने इस विधि का प्रयोग करके हमारे मनोविज्ञान के ज्ञान में वृद्धि की है।''
4. **अन्य विधियों में सहायक :–** डगलस व हालैण्ड के अनुसार ''यह विधि अन्य विधियों द्वारा प्राप्त किये गये तथ्यों नियमों और सिद्धांन्तों की व्याख्या करने में सहायता देती है।''
5. **यंत्र व सामग्री की आवश्यकता :–** रॉस के अनुसार ''यह विधि खर्चीली नहीं है क्योंकि इसमें किसी विशेष यंत्र या सामग्री की आवश्यकता नहीं पड़ती है।''
6. **प्रयोगशाला की आवश्यकता :–** यह विधि बहुत सरल है। क्योंकि इसमें किसी प्रयोगशाला की आवश्यकता नहीं है। रॉस के शब्दों में ''मनोवैज्ञानिकों का स्वयं का मस्तिष्क प्रयोगशाला होता है और क्योंकि वह सदैव उसके साथ रहता है इसलिए वह अपनी इच्छानुसार कभी भी निरीक्षण कर सकता है।''

2. जीवन इतिहास विधि या व्यक्ति अध्ययन विधि (Case study or case history method):–

व्यक्ति अध्ययन विधि का प्रयोग मनोवैज्ञानिकों द्वारा मानसिक रोगियों, अपराधियों एवं समाज विरोधी कार्य करने वाले व्यक्तियों के लिये किया जाता है। ''जीवन इतिहास द्वारा मानव व्यवहार का अध्ययन।'' बहुधा मनोवैज्ञानिक का अनेक प्रकार के व्यक्तियों से पाला पड़ता है। इनमें कोई अपराधी, कोई मानसिक रोगी, कोई झगडालू, कोई समाज विरोधी कार्य करने वाला और कोई समस्या बालक होता है। मनोवैज्ञानिक के विचार से व्यक्ति का भौतिक, पारिवारिक व सामाजिक वातावरण उसमें मानसिक

असंतुलन उत्पन्न कर देता है। जिसके फलस्वरूप वह अवांछनीय व्यवहार करने लगता है। इसका वास्तविक कारण जानने के लिए वह व्यक्ति के पूर्व इतिहास की कड़ियों को जोड़ता है। इस उद्देश्य से वह व्यक्ति उसके माता पिता, शिक्षकों, संबंधियों, पड़ोसियों, मित्रों आदि से भेंट करके पूछताछ करता है। इस प्रकार वह व्यक्ति के वंशानुक्रम, पारिवारिक और सामाजिक वातावरण, रूचियों, क्रियाओं, शारीरिक स्वास्थ्य, शैक्षिक और संवेगात्मक विकास के संबंध में तथ्य एकत्र करता है जिनके फलस्वरूप व्यक्ति मनोविकारों का शिकार बनकर अनुचित आचरण करने लगता है। इस प्रकार इस विधि का उद्देश्य व्यक्ति के किसी विशिष्ट व्यवहार के कारण की खोज करना है। क्रो व क्रो ने लिखा है ''जीवन इतिहास विधि का मुख्य उद्देश्य किसी कारण का निदान करना है।''

3. वस्तुनिष्ठ विधियां

बहिर्दर्शन या अवलोकन विधि – (Extrospection or observational method)

बहिदर्शन विधि को अवलोकन या निरीक्षण विधि भी कहा जाता है। अवलोकन या निरीक्षण का सामान्य अर्थ है– ध्यानपूर्वक देखना। हम किसी के व्यवहार आचरण एवं क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं आदि को बाहर से ध्यानपूर्वक देखकर उसकी आंतरिक मनःस्थिति का अनुमान लगा सकते है। उदाहरणार्थः– यदि कोई व्यक्ति जोर–जोर से बोल रहा है और उसके नेत्र लाल है तो हम जान सकते है कि वह क्रुद्ध है। किसी व्यक्ति को हंसता हुआ देखकर उसके खुश होने का अनुमान लगा सकते हैं।

निरीक्षण विधि में निरीक्षणकर्ता, अध्ययन किये जाने वाले व्यवहार का निरीक्षण करता है और उसी के आधार पर वह विषय के बारे में अपनी धारणा बनाता है। व्यवहारवादियों ने इस विधि को विशेष महत्व दिया है।

कोलेसनिक के अनुसार निरीक्षण दो प्रकार का होता है (1) औपचारिक और (2) अनौपचारिक। औपचारिक निरीक्षण नियंत्रित दशाओं में और अनौपचारिक निरीक्षण अनियंत्रित दशाओं में किया जाता है। इनमें से अनौपचारिक निरीक्षण, शिक्षक के लिये अधिक उपयोगी है। उसे कक्षा और कक्षा के बाहर अपने छात्रों के व्यवहार का निरीक्षण करने के लिए अनेक अवसर प्राप्त होते है। वह इस निरीक्षण के आधार पर उनके व्यवहार के प्रतिमानो का ज्ञान प्राप्त करके उनको उपयुक्त निर्देशन दे सकता है।

4. प्रश्नावली :– गुड तथा हैट (Good & Hatt) के अनुसार –''सामान्यतः प्रश्नावली शाब्दिक प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने की विधि है, जिसमें व्यक्ति को स्वयं ही प्रारूप में भरकर देने होते हैं। इस विधि में प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करके समस्या संबंधी तथ्य एकत्र करना मुख्य होता है। प्रश्नावली एक प्रकार से लिखित प्रश्नों की योजनाबद्ध सूची होती है। इसमें सम्भावित उत्तरों के लिए या तो स्थान रखा जाता है या सम्भावित उत्तर लिखे रहते हैं।

5. साक्षात्कार :–

इस विधि में व्यक्तियों से भेंट कर के समस्या संबंधी तथ्य एकत्रित करना मुख्य होता हैं इस विधि के द्वारा व्यक्ति की समस्याओं तथा गुणों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इसमें दो व्यक्तियों में आमने–सामने मौखिक वार्तालाप होता है, जिसके द्वारा व्यक्ति की समस्याओं का समाधान खोजने तथा शारीरिक और मानसिक दशाओं का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है।

गुड एवं हैट के शब्दों में – ''किसी उद्देश्य से किया गया गम्भीर वार्तालाप ही साक्षात्कार है।

6. प्रयोग विधि :–

''पूर्व निर्धारित दशाओं में मानव व्यवहार का अध्ययन।'' विधि में प्रयोगकर्ता स्वयं अपने द्वारा निर्धारित की हुई परिस्थितियों या वातावरण में किसी व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करता है या किसी समस्या के संबंध में तथ्य एकत्र करता है।

7. मनोचिकित्सीय विधि :–

''व्यक्ति के अचेतन मन का अध्ययन करके उपचार करना।'' इस विधि के द्वारा व्यक्ति के अचेतन मन का अध्ययन करके, उसकी अतृप्त इच्छाओं की जानकारी प्राप्त की जाती है। तदुपरांत उन इच्छाओं का परिष्कार या मार्गान्तीकरण करके व्यक्ति का उपचार किया जाता है और इस प्रकार इसके व्यवहार को उत्तम बनाने का प्रयास किया जाता है।

इकाई सारांश–

- मनोविज्ञान एक प्रगतिशील विज्ञान हैं आधुनिक शिक्षा का आधार मनोविज्ञान है।
- शिक्षा तथा मनोविज्ञान सिद्धांत तथा व्यवहार का समन्वय है।
- शिक्षा मनोविज्ञान का क्षेत्र और समस्याऐं अनिश्चित और परितर्वनशील हैं।
- शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययन और अनुसंधान के लिये प्रयोग में लायी जाने वाली विधियों को दो भागों में बांटा गया है –
  1) आत्म निरीक्षण विधि।
  2) वस्तुनिष्ठ विधियाँ।

शिक्षा तथा मनोविज्ञान के सम्बन्धों ने शिक्षक, छात्र तथा शैक्षिक परिवेश में कार्य कर रहे व्यक्तियों के ज्ञान तथा कौशल से सम्पन्न किया है। शिक्षा को सूक्ष्म तथा व्यापक आयाम प्रदान कर उसे जनोपयोगी तथा व्यक्ति विकास के लिये सार्थक बनाया है।

पाठ्गत प्रश्न

प्रश्न 1. मनोविज्ञान की परिभाषायें लिखिए। (कोई दो)

प्रश्न 2. मनोविज्ञान की शाखाएं लिखिए।

प्रश्न 3. मनोविज्ञान का शिक्षा के साथ क्या संबंध है?

प्रश्न 4. शिक्षा मनोविज्ञान की आवश्यकता लिखिए।

प्रश्न 5. शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र से क्या आशय है?

प्रश्न 6. शिक्षा मनोविज्ञान की कोई दो विधियां लिखिए।

पत्राचार पाठ्यक्रम
माध्यमिक शिक्षा मण्डल, मध्यप्रदेश, भोपाल
(द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित)
डिप्लोमा इन एज्युकेशन
विषय – शिक्षा मनोविज्ञान
द्वितीय वर्ष
प्रश्न पत्र – छटवां

इकाई–2 सीखना या अधिगम आवंटित अंक–7

विषयांश –

2.1 – अर्थ, नियम एवं सिद्धांत– पावलाव, कोहलर, थार्नडाइक।
2.2 – (अ) प्रयास एवं भूल का सिद्धांत।
(ब) मेज (maze) उपकरण के प्रयोग द्वारा सिद्धांत का सत्यापन।

2.3 – सीखने का स्थानांतरण।
2.4 – शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सीखने का महत्व।

पिछले अध्याय में आपने मनोविज्ञान की भारतीय संकल्पना, परिभाषा, शिक्षा और मनोविज्ञान का संबंध, शिक्षा मनोविज्ञान की परिभाषा, आवश्यकता क्षेत्र एवं विधियों के विषय में अध्ययन किया। प्रस्तुत इकाई में सीखना या अधिगम का अर्थ, नियम एवं सिद्धांत के विषय में अध्ययन करेंगे। इसके साथ ही शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सीखने का महत्व विषयक जानकारी प्राप्त करेंगे।

2.1 सीखना या अधिगम का अर्थ :–

सीखना या अधिगम एक व्यापक सतत् एवं जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। मनुष्य जन्म के उपरांत ही सीखना प्रारंभ कर देता है और जीवन भर कुछ न कुछ सीखता रहता है। धीरे–धीरे वह अपने को वातावरण से समायोजित करने का प्रयत्न करता है। इस समायोजन के दौरान वह अपने अनुभवों से अधिक लाभ उठाने का प्रयास करता है। इस प्रक्रिया को मनोविज्ञान में सीखना कहते हैं। जिस व्यक्ति में सीखने की जितनी अधिक शक्ति होती है, उतना ही उसके जीवन का विकास होता है। सीखने की प्रक्रिया में व्यक्ति अनेक क्रियाऐं एवं उपक्रियाऐं करता है। अतः सीखना किसी स्थिति के प्रति सक्रिय प्रतिक्रिया है।

उदाहरणार्थ – छोटे बालक के सामने जलता दीपक ले जाने पर वह दीपक की लौ को पकड़ने का प्रयास करता है। इस प्रयास में उसका हाथ जलने लगता है। वह हाथ को पीछे खींच लेता है। पुनः जब कभी उसके सामने दीपक लाया जाता है तो वह अपने पूर्व अनुभव के आधार पर लौ पकड़ने के लिए, हाथ नहीं बढ़ाता है, वरन् उससे दूर हो जाता है। इसी विचार को स्थिति के प्रति प्रतिक्रिया करना कहते हैं। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि अनुभव के आधार पर बालक के स्वाभाविक व्यवहार में परिवर्तन हो जाता है।

सीखना या अधिगम की परिभाषायें :–

1. बुडवर्थ के अनुसार – ''सीखना विकास की प्रक्रिया है।''
2. स्किनर के अनुसार – ''सीखना व्यवहार में उत्तरोत्तर सामंजस्य की प्रक्रिया है।''
3. जे.पी. गिलर्फड के अनुसार – ''व्यवहार के कारण, व्यवहार में परिवर्तन ही सीखना है।''
4. कालविन के अनुसार – ''पहले से निर्मित व्यवहार में अनुभवों द्वारा हुए परिवर्तन को अधिगम कहते हैं।''

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि सीखने के कारण व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन आता है, व्यवहार में यह परिवर्तन बाह्य एवं आंतरिक दोनों ही प्रकार का हो सकता है। अतः सीखना एक प्रक्रिया है जिसमें अनुभव एवं प्रशिक्षण द्वारा व्यवहार में स्थायी या अस्थाई परिवर्तन दिखाई देता है।

सीखने के नियम :–

ई.एल. थार्नडाइक अमेरिका का प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक हुआ है जिसने सीखने के कुछ नियमों की खोज की जिन्हें निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया गया है –

सीखने के नियम

(अ) मुख्य नियम (Primary Laws)	(ब) गौण नियम (Secondary Laws)
अ.1. तत्परता का नियम।	ब.1. बहु–अनुक्रिया का नियम।
2. अभ्यास का नियम – 1) उपयोग का नियम।	2.मानसिक स्थिति का नियम।
2) अनुप्रयोग का नियम।	3. आंशिक क्रिया का नियम।
3. प्रभाव का नियम।	4. समानता का नियम।
	5. साहचर्य–परिर्वतन का नियम।

(अ) मुख्य नियम

सीखने के मुख्य नियम तीन है जो इस प्रकार हैं –

1. **तत्परता का नियम (Law of Readinesss)** – इस नियम के अनुसार जब व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए पहले से तैयार रहता है तो वह कार्य उसे आनन्द देता है एवं शीघ्र ही सीख लेता है। इसके विपरीत जब व्यक्ति कार्य को करने के लिए तैयार नहीं रहता या सीखने की इच्छा नहीं होती है तो वह झुंझला जाता है या क्रोधित होता है व सीखने की गति धीमी होती है।

2. **अभ्यास का नियम (Law of exercise)** – इस नियम के अनुसार व्यक्ति जिस क्रिया को बार–बार करता है उस शीघ्र ही सीख जाता है तथा जिस क्रिया को छोड़ देता है या बहुत समय तक नहीं करता उसे वह भूलने लगता है। जैसे'– गणित के प्रश्न हल करना, टाइप करना, साइकिल चलाना आदि। इसे उपयोग तथा अनुपयोग (use and disuse) का नियम भी कहते हैं।

3. **प्रभाव का नियम (Law of effect)–** इस नियम के अनुसार जीवन में जिस कार्य को करने पर व्यक्ति पर अच्छा प्रभाव पड़ता है या सुख का या संतोष मिलता है उन्हें वह सीखने का प्रयत्न करता है एवं जिन कार्यों को करने पर व्यक्ति पर बुरा प्रभाव पडता है उन्हें वह करना छोड़ देता है। इस नियम को सुख तथा दुःख (Pleasure and Pian) या पुरस्कार तथा दण्ड का नियम भी कहा जाता है।

(ब) गौण नियम (Secondary Laws)

1. **बहु अनुक्रिया नियम (Law of multiple Reoponse –** इस नियम के अनुसार व्यक्ति के सामने किसी नई समस्या के आने पर उसे सुलझाने के लिए वह विभिन्न प्रतिक्रियायेंक र हल ढूढने का प्रयत्न करता है। वह प्रतिक्रियाये ंतब तक करता रहता है जब तक समस्या का सही हल न खोज ले और उसकी समस्या सुलझ नहीं जाती। इससे उसे संतोष मिलता है थार्नडाइक का प्रयत्न एवं भूल द्वारा सीखने का सिद्धान्त इसी नियम पर आधारित है।

2. **मानसिक स्थिति या मनोवृत्ति का नियम (Law of Partial Activity)–** इस नियम के अनुसार जब व्यक्ति सीखने के लिए मानसिक रूप से तैयार रहता है तो वह शीघ्र ही सीख लेता है। इसके विपरीत यदि व्यक्ति मानसिक रूप से किसी कार्य को सीखने के लिए तैयार नहीं रहता तो उस कार्य को वह सीख नहीं सकेगा।

3. **आंशिक क्रिया का नियम (Law of Partial Analogy)–** इस नियम के अनुसार व्यक्ति किसी समस्या को सुलझाने के लिए अनेक क्रियायें प्रयत्न एवं भूल के आधार पर करता है। वह अपनी अंर्तदृष्टि का उपयोग कर आंशिक क्रियाओं की सहायता से समस्या का हल ढूढ़ लेता है।

4. **समानता का नियम (Law of Analogy)–** इस नियम के अनुसार किसी समस्या के प्रस्तुत होने पर व्यक्ति पूर्व अनुभव या परिस्थितियों में समानता पाये जाने पर उसके अनुभव स्वतः ही स्थानांतरित होकर सीखने में मद्द करते हैं।

5. **साहचर्य परिवर्तन का नियम (Law of Associative Shifting)–** इस नियम के अनुसार व्यक्ति प्राप्त ज्ञान का उपयोग अन्य परिस्थिति में या सहचारी उद्दीपक वस्तु के प्रति भी करने लगता है। जैसे–कुत्ते के मुह से भोजन सामग्री को देख कर लार टपकरने लगती है। परन्तु कुछ समय के बाद भोजन के बर्तन को ही देख कर लार टपकने लगती है।

सीखने के सिद्धांत (Theories of Learning) :–

व्यक्ति के व्यवहार की प्रक्रियाओं में सीखने का महत्वपूर्ण स्थान है। मनोवैज्ञानिकों ने सीखने की प्रक्रिया का अध्ययन पशुओं एवं व्यक्तियों पर किया। उनके विचार एवं मत ही सीखने के सिद्धांत कहलाते है।

सीखने के मुख्य सिद्धांत निम्नलिखित हैं –

1. अनुकूलित–अनुक्रिया का सिद्धांत (Theary of conditioned Reoponse by Pavlov)
2. सक्रिय अनुबन्ध का सिद्धांत (Theory of operant conditioning by Skinner)
3. उद्दीपन अनुक्रिया का सिद्धांत (Tharhdik Theary of Stimulus Response)
4. सूझ या अर्न्तदृष्टि का सिद्धांत (Kohler's Insight Theory)
5. कर्ट लेविन का क्षेत्र सिद्धांत (Topoligical Theory of Kurt Lewin)

प्रस्तुत पाठ्यक्रम में पावलव, कोहलर एवं थार्नडाइक का सिद्धान्त है। अतः उनके सिद्धान्तों का ही उल्लेख किया जा रहा है।

1. पावलव का अनुकूलित–अनुक्रिया का सिद्धांत (Pavlov Theary of conditioned Reoponse) -

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन 1904 में पावलव ने किया था। उसने अनुबंधित क्रिया (Conditioned Respouse) को समझाने के लिए कुत्ते के ऊपर प्रयोग किया।

प्रारम्भ में भूखे कुत्ते के मुंह में भोजन देखकर लार आ जाना स्वाभाविक क्रिया है।

1) पावलव में प्रयोग के प्रारम्भ में कई दिनों तक खाने के साथ घण्टी बजा कर खाना दिया। (खाना + घण्टी) यह प्रयोग कई दिनों तक दोहराने पर पाया गया कि खाना एवं घण्टी में सम्बन्ध उत्पन्न हो जाता है। एवं स्वाभाविक क्रिया–लार टपकना होती है।

2) इसके बाद केवल घण्टी बजाई परन्तु खाना साथ में नहीं दिया गया। इससे यह पाया गया कि कुत्ता स्वाभाविक क्रिया (लार टपकती है) करता है। इस प्रयोग को इस प्रकार दर्शाया जा सकता है–

	उत्तेजक		अनुक्रिया
स्थिति–1 अनुबंध से पूर्व	भोजन 1. (स्वाभाविक उत्तेजक)	अनुबंध के पूर्व →	लार टपकना (स्वाभाविक क्रिया)
	2. घण्टी बजाना (कृत्रिम उत्तेजक)	अनुबंध के बिना →	ध्वनि सुनना (स्वाभाविक क्रिया)
स्थिति–2 अनुबंध की अवधि में	3. भोजन + घण्टी बजान (स्वाभाविक) (कृत्रिमउत्तेजक) पुनरावृत्ति	→	लार टपकना (स्वाभाविक क्रिया)
स्थिति–3 अनुबन्ध के बाद	4. घण्टी बजाना (कृत्रिम उत्तेजक)	अनुबंध स्थापित →	लार टपकना (स्वाभाविक क्रिया)

इस सिद्धांत का प्रयोग पशुओं एवं मनुष्यों के व्यवहार को सुधारने व परिमार्जन में महत्वपूर्ण सिद्ध होता है।

सिद्धांत :– अस्वाभाविक (कृत्रिम) उत्तेजना के प्रति स्वाभाविक क्रिया का उत्पन्न होना अनुकूलित अनुक्रिया कहलाती है। उदाहरण – मिठाई की दुकान को देखकर बच्चों के मुंह से लार टपकने लगता है।

''सूझ तथा अर्न्तदृष्टि का सिद्धान्त'' (Kohler's Theory of Insight) :–

सूझ द्वारा सीखने के सिद्धांत के प्रतिपादक जर्मनी के गेस्टाल्टवादी है। इसलिए इस सिद्धांत को गेस्टाल्ट सिद्धांत भी कहते हैं। इनके अनुसार व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण परिस्थिति को अपनी मानसिक शक्ति से अच्छी तरह समझ या सीख लेता है। इस प्रकार वह अपनी सूझ के कारण करता है। इस संबंध में अनेक प्रयोग किए जा चुके हैं, जिनमें सबसे प्रसिद्ध प्रयोग कोहलर का है।

कोहलर का प्रयोग –

कोहलर ने एक भूखे चिम्पाजी को एक कमरे में बंद किया। कमरे की छत में कुछ केले इस प्रकार टाँग दिए कि वे चिम्पाजी की पहुंच के बाहर थे। कमरे में कुछ दूरी पर तीन–चार खाली बक्से भी रखे गए। चिम्पांजी ने उछल कर केले लेने का प्रयास किया पर सफल नहीं हुआ। कुछ समय पश्चात फर्श पर रखे खाली बक्सों को देखकर उनको केले के नीचे खींच कर उस पर चढ़ गया केले प्राप्त कर लिए। यह उसकी सूझ ही है जिसने उसे अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफलता दी। चिम्पान्जी के समान बालक और व्यक्ति भी सूझ द्वारा सीखते हैं।

2.2 (अ) '' उद्दीपन–अनुक्रिया का सिद्धान्त (Theorhdik's Stimulus Respouse Theory) :–

किसी भी कार्य को व्यक्ति एकदम नहीं सीख पाता है। सीखने की प्रक्रिया में व्यक्ति प्रयत्न करता है और कठिनाईयां आती हैं तथा गलती व भूलें भी करता है। लगातार कोशिश करते रहने से भूलें व गलती कम होती जाती हैं। इसलिए इस सिद्धांत को प्रयत्न और भूल (Trial and error) का सिद्धात कहते हैं।

थार्नडाइक ने इस सिद्धांत का परीक्षण भूखी बिल्ली पर किया। उसने प्रयोग में भूखी बिल्ली को पिंजड़े में बंद कर दिया। पिंजड़े का दरवाजा एक खटके के दबने से खुलता था। उसके बाहर भोजन रख दिया। बिल्ली में भोजन (उद्दीपक) देखकर प्रतिक्रिया आरम्भ की। उसने अनेक प्रकार से बाहर निकलने का प्रयत्न किया। एक बार संयोग से उसका पंजा खटके पर पड़ गया। और दरवाजा खुल गया। थार्नडाइक ने इस प्रयोग को अनेक बार दोहराया। अन्त में एक समय ऐसा आ गया जब बिल्ली किसी प्रकार की भूल न करके खटके को दबा कर पिंजड़े का दरवाजा खोलने लगी। इस प्रकार उद्दीपक और प्रतिक्रिया में संबंध स्थापित हो गया।

(ब) मेज (Maze) उपकरण प्रयोग द्वारा सीखने के सिद्धान्त का सत्यापन :–

थार्नडाइक ने महत्वपूर्ण प्रयोग चूहों पर किया। इसके लिए भूल–भूलैया का प्रयोग किया। इस भूल–भूलैया में प्रवेश द्वार से भीतर जाने पर अनेक रास्ते मिलते थे। थार्नडाइक ने इस भूल–भूलैया के एक रास्ते में पनीर (भोजन) का टुकड़ा रख दिया तथा एक भूखे चूहे को भूल–भूलैया में अंदर छोड़ दिय। चूहा काफी देर तक भूल–भूलैया में अंधेरे मार्गो पर घूमता रहा परन्तु सही रास्ता

(पनीर तक पहुंचने का मार्ग) नहीं मिला। कुछ समय के बाद संयोग से उसे रास्ते में पनीर का टुकड़ा रखा हुआ मिल गया और उसे खा कर भूख शान्त की। इस प्रयोग को कई बार दोहराया गया। यह पाया गया है कि चूहे द्वारा अंधेरे मार्ग पर भटकने की समय अवधि कम होती गई तथा अन्त में ऐसी स्थिति आ गई की प्रवेश द्वारा पर छोड़े जाने पर चूहा बिना भटके हुए ही सीधे भोजन तक पहुंचने लगा। इस प्रकार उद्दीपन (भोज्य पदार्थ) और अनुक्रिया (सही मार्ग) के संबंध स्थापित हो गया।

उपरोक्त प्रयोग के आधार पर थार्नडाइक ने सीखने के प्रमुख तीन नियमों एवं सिद्धान्तों का सत्यापन किया।

2.3 सीखने का स्थानांन्तरण :–

जब व्यक्ति किसी कौशल तथा अर्जित ज्ञान का उपयोग किसी अन्य परिस्थिति में करता है तो वह स्थिति अधिगम का स्थानान्तरण कहलाता है।

अधिनयम के स्थानांन्तरण में प्रशिक्षण भी शामिल है। इसलिए स्थानांतरण में सीखन तथा प्रशिक्षण दोनों निहित है। अतः किसी सीखी हुई क्रिया या विषय का अन्य परिस्थितियों में उपयोग करने से है।'' जैसे– बालक विद्यालय में जोड़, गुणा, घटाना, सीखता है और उस ज्ञान का उपयोग बाजार में चीजें खरीदते समय करता है।

इस प्रकार :–

1) अधिगम या सीखने का स्थानांतरण एक सोद्देश्य क्रिया है।
2) इस क्रिया में पहले से सीखे हुए ज्ञान तथा कौशल का अन्य परिस्थितियों में उपयोग किया जाता है।
3) इस स्थानांतरण में समायोजन में सहायता मिलती है।
4) सूझ या अर्न्तदृष्टि का विकास होता है।

स्थानांतरण के प्रकार :–

अधिगम स्थानांतरण तीन प्रकार का होता है –

1. **नकारात्मक स्थानांतरण–** जब एक परिस्थिति में सीख गया ज्ञान, नवीन ज्ञान के सीखने में बाधा उत्पन्न करता है तो उसे नकारात्मक स्थानांतरण कहते हैं।
2. **सकारात्मक स्थानांतरण–** जब एक परिस्थिति मे या एक विषय में सीखा गया ज्ञान किसी नवीन परिस्थिति या विलम को सीखने में सहायता करता है, तो उसे सकारात्मक स्थानांतरण कहते है।
3. **शून्य स्थानांतरण–** जब एक कार्य का प्रशिक्षण दूसरे कार्य को सीखने में न तो सहायता ही करता है और न ही बाधा उत्पन्न करता है तो इस प्रकार के प्रशिक्षण को शून्य स्थानांतरण कहते हैं।

2.4 शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सीखने का महत्व :–

शिक्षण अधिगम की प्रक्रिया का मूल उद्देश्य है अधिगम की प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाना। प्रभावशाली अधिगम के लिये स्वयं अनुभव प्राप्त करना तथा भविष्य में उसका लाभ उठाना है। अनुभव के गुण, उसकी मात्रा पर सीखना निर्भर करना है। अतः इस हेतु निम्न उपाय अपनाये जाने चाहिएः–

1. सीखने की इच्छा।
2. सशक्त अभिप्रेरणा।
3. सीखने के सिद्धांत का प्रभावशाली उपयोग।
4. मूल प्रवृत्तियों में शोधन।
5. विद्यालय का उत्तम वातावरण।
6. अच्छी आदतों का निर्माण।
7. स्थायी भावों का निर्माण।
8. खण्ड एवं पूर्ण विधि द्वारा सीखना।
9. शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य।
10. रूचि तथा रूझान का विकास।
11. विषय सामग्री को स्वरूप देना।
12. सीखने की विधियां।
13. अभ्यास।
14. सफलता या परिणाम का ज्ञान।

शिक्षक तथा अभिभावकों का दायित्व सीखने को प्रभावशाली बनाने के लिये और भी बढ़ जाता है। उन्हें चाहिए कि बालकों को सीखने की प्रक्रिया के दौरान संतोषजनक अनुभव प्रदान करें।

अधिगम को प्रभावशील तथा सरल बनाने का दायित्व शिक्षक का है। शिक्षक मनोविज्ञान का ज्ञान केवल ज्ञान के लिये नहीं यह तो व्यवहार का प्रयोग है। व्यवहार को तकनीकी के द्वारा वांछित सीखने की अनुकूल परिस्थितियां पैदा करना है। शिक्षक का दायित्व है कि वह प्रभावशाली अधिगम के लिये छात्रों में सीखने की इच्छा उत्पन्न करे, उन्हें प्रेरणा दे। सीखने की मनोवैज्ञानिक तथा वैज्ञानिक शिक्षण विधियों का प्रयोग करे और शिक्षण सामग्री को वांछित स्वरूप प्रदान करें। छात्रों को परिणाम का ज्ञान कराता रहे और सफलता के लिये निरंतर अभ्यास करता रहे।

सारांश

व्यवहार के कारण, व्यवहार में परिवर्तन ही सीखना है। सीखना जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है।

सीखने के नियम :–

(अ) मुख्य नियम – 1) प्रभाव का नियम 2) तत्परता का नियम 3) अभ्यास का नियम

(ब) गौण नियम – 1) बहु–अनुक्रिया का नियम 2) मानसिक स्थिति का नियम
3) आंशिक क्रिया का नियम 4) समानता का नियम
5) साहचर्य परिवर्तन का नियम

सीखने के सिद्धान्त :–

(1) अनुकूलित – अनुक्रिया का सिद्धान्त – (पावलव का सिद्धान्त)

(2) सूझ तथा अर्न्तदृष्टि का सिद्धान्त – (कोहलर का सिद्धान्त)

(3) उद्दीपन–अनुक्रिया का सिद्धान्त/प्रयत्न एवं भूल का सिद्धान्त – (थार्नडाइक का सिद्धान्त)

पाठगत – प्रश्न

प्रश्न–1 सीखना या अधिगम से क्या अभिप्राय है?

प्रश्न–2 तत्परता का निमय क्या है?

प्रश्न–3 सीखने को दो परिभाषाएं लिखिए?

प्रश्न–4 सीखने के प्रमुख नियमों के नाम लिखिए?

प्रश्न–5 सीखने के प्रमुख सिद्धान्तों के नाम लिखिये?

प्रश्न–6 प्रयत्न एवं मूल सिद्धान्त के जन्मदाता कौन है? नाम लिखिए।

प्रश्न–7 सीखना के स्थानांतरण के प्रकारों के नाम बताइये?

प्रश्न–8 नकारात्मक स्थानांतरण क्या है?

प्रश्न–9 शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में सीखने के 5 महत्व बताइये।

———

पत्राचार पाठ्यक्रम
माध्यमिक शिक्षा मण्डल, मध्यप्रदेश, भोपाल
(द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित)
डिप्लोमा इन एज्युकेशन
विषय – शिक्षा मनोविज्ञान
द्वितीय वर्ष
प्रश्न पत्र – छटवां
विषय – शिक्षा मनोविज्ञान

इकाई – 3 सीखने को प्रभावित करने वाले कारक – अवधान और रूचि। आवंटित अंक – 07

विषयांश –

3.1 अवधान, अर्थ, विशेषताएं, प्रकार।
3.2 अवधान भंग होने के कारण और उपाय।
3.3 अवधान का विस्तार ज्ञात करने हेतु प्रयोग।
3.4 रूचि, अर्थ, विशेषताएं, प्रकार।
3.5 सीखने में रूचि बनाए रखने के उपाय।
3.6 रूचि ज्ञात करने हेतु परीक्षण।
I शैक्षिक रूचि प्रपत्र कुलश्रेष्ठ।

प्रिय छात्राध्यापक!

पिछले अध्याय में आपने सीखना अथवा अधिगम के अर्थ, नियम एवं सिद्धांत, सीखने के प्रकार आदि के विषय में जानकारी प्राप्त की। प्रस्तुत अध्याय में आप सीखने को प्रभावित करने वाले कारक– अवधान एवं रूचि के विषय में ज्ञान प्राप्त करेंगे।

अवधान या ध्यान (Attention) :–

किसी वस्तु पर चेतना केन्द्रित करना ध्यान है– मनोवैज्ञानिकों का कहना था कि ध्यान या अवधान एक मानसिक शक्ति है। लेकिन वर्तमान मनोवैज्ञानिकों ने यह स्पष्ट कर दिया कि ध्यान अथवा अवधान एक मानसिक शक्ति नहीं है बल्कि एक मानसिक प्रक्रिया है।

चेतना व्यक्ति का स्वाभाविक गुण है। चेतना के कारण ही उसे विभिन्न वस्तुओं का ज्ञान होता है। यदि वह कमरे में बैठा हुआ पुस्तक पढ़ रहा है तो उसे वहां की सब वस्तुओं की कुछ न कुछ चेतना अवश्य होती है जैसे मेज, कुर्सी, अलमारी आदि पर उसकी चेतना का केन्द्र वह पुस्तक है, जिसे वह पढ़ रहा है।

चेतना के किसी वस्तु पर इस प्रकार के केन्द्रित होने को अवधान कहते है। दूसरे शब्दों में किसी वस्तु पर चेतना को केन्द्रित करने की मानसिक प्रक्रिया को अवधान या ध्यान कहते हैं

अवधान की परिभाषा :–

किसी वस्तु अथवा विचार आदि पर चेतना को केन्द्रित करने की मानसिक प्रक्रिया को अवधान या ध्यान कहते हैं।

रॉस के अनुसार, ''अवधान विचार की किसी वस्तु को मस्तिष्क के सामने स्पष्ट रूप से उपस्थित करने की प्रक्रिया है।''

डम्बिल के अनुसार, ''अवधान दूसरी वस्तु की अपेक्षा एक वस्तु पर चेतना का केन्द्रिकरण है।''

अवधान की विशेषताएं :–

1. किसी भी वस्तु अथवा विचार आदि पर अवधान होने के लिये मानसिक सक्रियता आवश्यक है।
2. किसी वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करने के लिए शारीरिक एवं मानसिक तत्परता आवश्यक है।
3. अवधान केन्द्रित करने के लिए अनेक वस्तुओं की अपेक्षा एक वस्तु पर ध्यान केंद्रित कर पाता है अतः अवधान का विस्तार संकुचित है।
4. अवधान बहुत चंचल होता है। व्यक्ति का अवधान एक वस्तु पर केन्द्रित होता है जैसे ही दूसरी वस्तु सामने आती है वैसे ही अवधान दूसरी वस्तु पर चला जाता है।
5. भाटिया के अनुसार, ''अवधान ज्ञानात्मक, क्रियात्मक और भावात्मक है।
6. अवधान प्रायः अस्थिर होता है एवं वातावरण के अन्य कारकों की और भटकने का प्रयास करता है।
7. अवधान में प्रयोजनता रहती है अर्थात जब व्यक्ति किसी वस्तु या विचार पर अवधान केन्द्रित करता है, उसका कोई न कोई उद्देश्य या प्रयोजन रहता है।
8. अवधान एक चयनात्मक प्रक्रिया है। व्यक्ति अपने अभिरूचि और मनोवृत्ति के अनुसार किसी वस्तु पर अवधान केन्द्रित करता है।
9. अवधान में सजीवता होती है। व्यक्ति जिस वस्तु पर अवधान केन्द्रित करता है वह वस्तु व्यक्ति की चेतना में स्पष्ट हो जाती है तथा जिस वस्तु पर अवधान केंद्रित नहीं होता उस वस्तु का चित्र व्यक्ति की चेतना में अस्पष्ट रहता है। अतः चेतना का कारण अवधान होता है।

10. अवधान केन्द्रित करने में इन्द्रियां, मुद्रा, मांसपेशियां आदि वातावरण के प्रति समायोजन कर लेती है। अतः अवधान में समायोजनता रहती है।

अवधान के प्रकार :–

जे.एस. रॉस ने अवधान का वर्गीकरण निम्नानुसार किया है:–

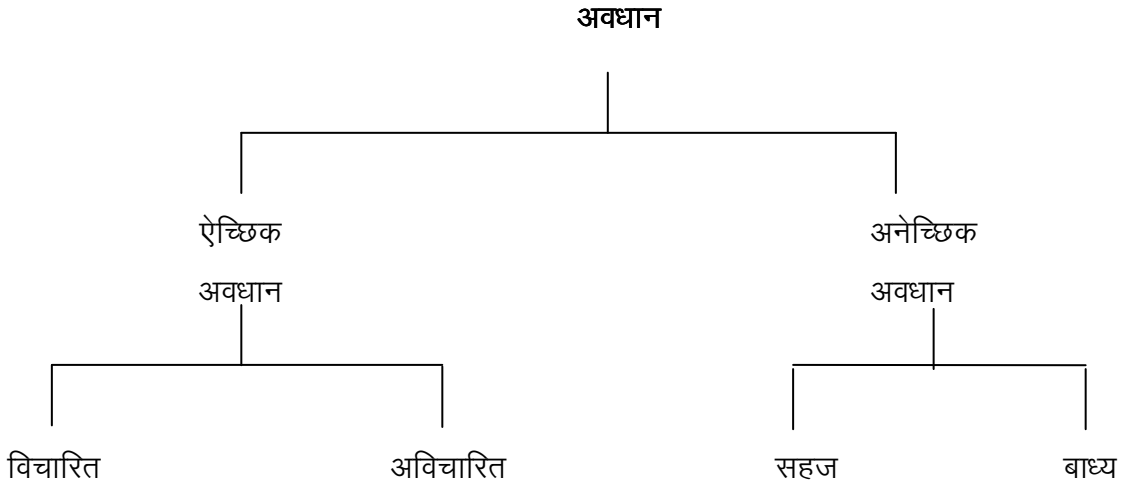

1. **ऐच्छिक अवधान :–** अर्जित अभिरूचि या रूचि पर आधारित होता है। यह दो प्रकार का होता है:–

   अ) विचारित:– जब हम अच्छी तरह विचार कर किसी विचार या वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करते हैं, तो वह विचारित ध्यान कहलाता है।

   ब) अविचारित:– इस प्रकार के ध्यान में व्यक्ति को कोई विचार नहीं करना होता है।

2. **अनेच्छिक अवधान:–** यह ध्यान जन्मजात अभिरूचियों पर निर्भर होता है। व्यक्ति का ध्यान किसी वस्तु पर केन्द्रित हो जाता है। यह दो प्रकार का होता है:–

   अ) सहज ध्यान :– यह मूल प्रवृत्तियों पर आधारित होता है।

   ब) बाध्य ध्यान :– इस प्रकार के ध्यान में बाध्यता प्रमुख होती है।

3. अवधान भंग होने के कारण :–

अवधान भंग होने के निम्नलिखित कारण हो सकते है –

1. **थकान –** थकान के कारण व्यक्ति किसी वस्तु पर अवधान केंद्रित नहीं कर पाता है।
2. **रूचि –** जिस वस्तु में व्यक्ति की रूचि नहीं होती है अवधान केंद्रित नहीं हो पाता है

3. **शक्तिशाली प्रेरक –** के प्रभाव से अवधान केन्द्रित करने में बाधा आती है। जैसे परीक्षा के समय जोर से लाउडस्पीकर का चलना पढ़ाई में अवधान केंद्रित नहीं हो पाता है। बालक का मन दूसरी ओर चला जाता है।
4. **अनुचित वातावरण** – जैसे तेज गर्मी या सर्दी, वर्षा या ठण्ड भी बालकों को अवधान केन्द्रित करने में बाधा डालते हैं।
5. **व्यक्ति का स्वास्थ्य** ठीक न होने पर अवधान केंद्रित करने में विध्न डालता है।
6. **शिक्षण विधियाँ** भी बालकों के अवधान केन्द्रित होने में बाधा डालते हैं।

जब व्यक्ति किसी विशेष वस्तु, व्यक्ति विचार या क्रिया को देखने या जानने के लिए उस पर अपना ध्यान केंद्रित कर रहे होते हैं तो हमारे बाह्य तथा आंतरिक वातावरण में कोई न कोई घटना या बात ऐसी घटित हो जाती है कि हमारा ध्यान उस ओर चला जाता है जिसके फलस्वरूप हमारे पहले से दिए जा रहे ध्यान की प्रक्रिया में रूकावट या बाधा आ जाती है। इस प्रक्रिया को अवधान भंग होने या व्यवधान कहते हैं। व्यवधान या अवधान भंग होने के अनेक कारण हैं :–

(1) **बाह्य उद्दीपन** – गर्मी,–सर्दी, तीव्र प्रकाश, शोर, संगीत, अधिकारियों की मानिसक स्थिति आदि शामिल होते हैं।

(2) **आंतरिक उद्दीपन** – सिर दर्द, पेट दर्द, बीमारी, घटना, काम करने का गलत व्यवहार आदि शामिल होते हैं।

3.2 अवधान भंग होने के कारण और उपाय :–

1. दृढ़ इच्छा शक्ति एवं संकल्प ।
2. ध्यान भंग की उपेक्षा।
3. ध्यान विचलित न होने देने क प्रयत्नों में वृद्धि करना।
4. टनुकूलन तथा समायोजन तकनीक का उपयोग।
5. पुनरावृति
6. नवीनता इत्यादि।

3.3 अवधान का विस्तार ज्ञात करने हेतु प्रयोग :–

अवधान का विस्तार ज्ञात करने में दो दशा मुख्य रूप से सहायक होती है –

(अ) बाह्य या वस्तुगत् दशा में (External or objective conditions)

(ब) आंतरिक या आत्मगत् दशा में (Internal or Subjective conditions)

(अ) बाह्य या वस्तुगत् दशायें

(Erternal or Objective Conditions)

बह्य या वस्तुगत दशाओं में निम्नलिखित दशायें सहायता देती है :

1) **उद्दीपक की प्रकृति (Nature of the Stimulus) –** जैसे छोटे बच्चों का शब्दों की जगह चित्रों की ओर आकर्षित होना, आकर्षित रंग, वस्तु आदि।

2) **उद्दीपक के उद्देश्य (Aims of the Stimulus) –** मेज पर रखा रिवलोना के स्थान पर चलते हुए खिलोंने बच्चों को आकर्षित करते हैं।

3) **अवधि (Duration) –** जो वस्तु या पाठ व्यक्ति के सामने अधिक समय तक रहती है या बार–बार आती है उस ओर अवधान केंद्रित होता है।

4) **आकार ;Size) –** जो वस्तु बड़े आकार की होती है वे व्यक्ति का अवधान केंद्रित करता है।

5) **नवीनता (Novelty) –** जो वस्तु विचार, व्यक्ति के लिए नवीन होते हैं। व्यक्ति का ध्यान आर्कषित करते है। जैसे– नए खिलौने, किताबें, कपडे आदि।

6) **पुनरावृत्ति (Repetition) –** जब वस्तु, विचार, उत्तेजना हमारे समक्ष बार–बार आती है। उन पर हमारा ध्यान अपने आप चला जाता है। जैस– रेडियो, टी.वी. में विज्ञापन, कक्षा में प्रश्नों की पुनरावृत्ति।

7) **रहस्यात्मकता (Secracy) –** किसी को देखकर बात करना व्यक्ति का ध्यान उस ओर आकर्षित करता है।

8) **तीव्रता (Intensity) –** दुर्बल उत्तेजनाओं की तुलना तीव्र उत्तेजनायें व्यक्ति का ध्यान में आकर्षित करती है। जैसे हल्के रंग की अपेक्षा चटकीले भड़कीले रंग, हल्की आवाज की जगह तीव्र आवाज व्यक्ति को आर्कषित करती है।

9) **विषमता (Contrast) –** विषमता भी व्यक्ति के अवधान को प्रभावित करती है। मोटे व्यक्ति के साथ पतले व्यक्ति का होना।

10) **परिवर्तन (Change) –** किसी स्थिति का अचानक परिवर्तन भी व्यक्ति के ध्यान को आर्कषित करता है। जैसे चलते पंखे, जलती ट्यूब–लाइट रेडियो या टी.वी. का अचानक बंद हो जाना उस ओर ध्यान आकर्षित करता है।

(ब) आंतरिक या आत्मगत् दशायें
(Internal or Subjective Conditions)

1. **आवश्यकता (Need)–** वह वस्तुऐ जो व्यक्ति की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, व्यक्ति का ध्यान शीघ्र ही आर्कषित कर लेती हैं।

2. **रूचि (Intrest)** – जिन वस्तुओं में व्यक्ति की रूचि होती है उन्हीं पर ध्यान केन्द्रित होता है।

3. **उद्देश्य (Objetives)** – व्यक्ति अपने चुने गए या स्थापित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति की क्रियाऐं उस दिशा में केन्द्रित रहती है।

4. **आदत (Habbit)** – व्यक्ति को जिन वस्तुओं या कार्यो की आदत होती है उन पर उसका अवधान केंद्रित होता है। जैसे–सुबह की चाय, अखबार, शाम को खेलना आदि।

5. **प्रशिक्षण (Training)** – प्रशिक्षण प्राप्त करते समय प्रशिक्षण द्वारा भी व्यक्ति का ध्यान केंद्रित होने लगता है।

6. **मानसिक दशा (Mental Condition)** – व्यक्ति कोई भी कार्य मानसिक दशा के आधार पर करता है। व्यक्ति का मन कभी प्रसन्न होता है तो कभी अप्रसन्न। अब इन स्थितियों में अवधान के केन्द्रिकरण भी प्रभावित होता है।

7. **पूर्व–ज्ञान (Previous Knowledge)** – थार्नडाइक एवं हरबर्ट आदि ने स्पष्ट कर दिया है कि बालक की शिक्षा पर उसके पूर्व–ज्ञान का प्रभाव पडता है। व्यक्ति का पूर्व–ज्ञान या अनुभव सीखने में ध्यान केंद्रित करता है।

8. **जिज्ञासा (Curiosity)** – जब व्यक्ति किसी कार्य को सीखने की जिज्ञासा रखता है उस कार्य पर उसका अवधान केंद्रित होता है।

9. **मनोवृत्ति (Attitude)** – व्यक्ति की मनोवृत्ति भी अवधान केन्द्रिकरण पर प्रभाव डालती है। जिस प्रकार की मनोवृत्ति होती है व्यक्ति का ध्यान उसी के अनुसार आर्कषित होता है। जैसे–मित्रों में सद्गुणों एवं शत्रुओं में बुराईयां ढूंढना आदि।

10. **अर्थ (Meaning)** – जिन विषयों, वस्तु का अर्थ व्यक्ति समझ लेता है वह व्यक्ति का अवधान केंद्रित कर लेती है।

3.4 रूचि अर्थ विशेषताएं एवं प्रकार :

मेक्डूगल के अनुसार,– '' रूचि गुप्त अवधान है, अवधान सक्रिय रूचि है।'' इसका अर्थ है कि रूचि अवधान मे तथा अवधान रूचि में प्रदर्शित होती है।

रॉस के अनुसार,– अवधान एवं रूचि एक ही सिक्के के दो पहलू है। अर्थात रूचि और अवधान एक दूसरे पर आधारित रहते हैं।

रूचि किसी वस्तु, व्यक्ति या विचार के प्रति सम्बन्ध जोड़ने वाली मानसिक क्रिया है। परन्तु मनोवैज्ञानिकों ने माना है कि रूचि एक मानसिक प्रक्रिया नहीं है बल्कि एक मानसिक व्यवस्था है। यह व्यवस्था अनुभव द्वारा बनती है। जो व्यक्ति में रूचि या अरूचि की अनुमति करती है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि आवश्यकता, प्रतिष्ठा, मूल्य तथा समझ आदि कारक रूचियों का निर्धारण करते हैं।

बी. एन. झा (B. N. Jha) के अनुसार– रूचि वह स्थिर मानसिक विधि है, जो ध्यान क्रिया को सतत् बनाये रखती है।

रूचि की विशेषताएं (Charecteritics of Interest) :–

रूचि में निम्नलिखित विशेषताएं पायी जाती है–

1. रूचि जन्मजात होती है।
2. रूचि मानसिक स्थिति को प्रकट करती है।
3. रूचि द्वारा व्यक्ति में सक्रियता निर्मित करती है।
4. रूचि सीखने में सहायक होती है।
5. रूचि व्यक्ति को क्रियाशील बनाए रखने में सहायक होती है।
6. रूचि व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुसार बदलती रहती है। अर्थात रूचियां परिवर्तनशील होती हे।
7. रूचियाँ व्यक्ति के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर से प्रभावित होती हैं।
8. रूचियाँ लिंग व आयु के अनुसार भिन्न–भिन्न होती हैं।
9. रूचियों पर व्यक्ति और वातावरण के अनेक कारक प्रभाव डालते हैं।
10. व्यक्ति की अभिप्रेरणा, योग्यता, पुरस्कार तथा संतुष्टि आदि के आधार पर रूचियों का निर्धारण होता है।

रूचियों के प्रकार (Types of Interest) :–

1. **जन्मजात रूचि (Inborn Interest) :–** जन्मजात रूचियाँ व्यक्ति की मूल प्रवृत्तियों (जो जन्म से व्यक्ति में आती है) पर निर्भर करती है। जैसे बच्चा खेलने में।

2. **अर्जित रूचि (Derived Interest) :–** वे रूचियाँ जो व्यक्ति के अभ्यास का परिणाम, या वातावरण, अनुभव आदि से विकसित होती है अर्जित रूचि कहते हैं। जैसे– व्यक्ति का कला के प्रति रूचि, विज्ञान, खेल, राजनीति एवं सामाजिक कार्य में रूचि। इस प्रकार की रूचियाँ वंशानुक्रम के प्रभावों के अतिरिक्त विकसित होती है।

3.5 सीखने में रूचि बनाए रखने के उपाय (Mcasures for Interest Continuance in Learnig):–

शिक्षा में बालक की रूचि बनाये रखने हेतु निम्नलिखित विधियों का उपयोग करना चाहिए–

(1) **छात्र का अध्ययन (Study of the Student)** – छात्र की मनोदशा का अध्ययन करके उनकी कक्षा में रूचि बढ़ाई जा सकती है।

(2) **उद्देश्य की स्पष्टता (Clearity of Aim)** – छात्र को यह बताया जाना चाहिए कि विषय या पाठ क्यों पढ़ाया जा रहा है। उसका भविष्य में क्या उपयोग है अर्थात् उद्देश्य स्पष्ट बताया जाए तो छात्र का मन स्वयं ही विषय या पाठ को सीखने में लगेगा।

(3) **रूचि का मापन (Measurement of Interest)** – छात्रों की रूचि का ध्यान रख कर पाठ या विषय को पढ़ाया जाता है तो वह शीघ्र ही सीख लेता है। शिक्षक का कार्य होता है कि बालक में रूचि को जागृत कर शिक्षा देवें तथा रूचि को प्रभावित करने वाले कारकों पर भी ध्यान रखना चाहिए।

(4) **सहायक सामग्री का प्रयोग (Use of material Aid)** – छात्रों में पाठ या विषय की ओर ध्यान आर्कषित करने के लिए शिक्षक को अपने पढ़ाने के दौरान सहायक सामग्री का उपयोग करना चाहिए।

(5) **उपयुक्त विधि (Appropriate Mathod)** – शिक्षक को छात्रों को ज्ञान देने के लिए उपयुक्त शिक्षण विधियों, युक्तियों, उदाहरणों का प्रयोग करना चाहिये, जिससे छात्र पाठ को शिक्षण प्रक्रिया के दौरान ही आत्मसात कर लेते हैं।

(6) **विषयवस्तु की उपयोगिता (Utility of Subject Matter)** – रूसो ने क्रिया के द्वारा सीखना' या 'अनुभव से सीखना' पर जोर दिया है। अत' शिक्षक इन विधियों को उपयोग पर छात्रों को विषयवस्तु का व्यवहारिक बनाकर ज्ञान देना चाहिए।

(7) **अध्यापक का प्रभाव** – छात्रों में सीखने के प्रति रूचि जागृत करने में शिक्षक के व्यक्तित्व का प्रभाव सबसे अधिक कार्य करता है। छात्र जिन शिक्षकों को पसन्द करते हैं उनकी बातों, क्रियाओं, आदतों, व्यवहारों को बहुत ध्यान से देखकर अपने को उसी अनुसार ढालने की कोशिश करते हैं। अतः जहां ध्यान होता है रूचि स्वतः जागृत हो जाती है।

3.6 रूचि ज्ञात करने हेतु परीक्षण (Various Test of Knowing Interest) :–

एस. पी. कुलश्रेष्ठ : का शैक्षिक रूचि–पत्रक

प्रस्तुत पत्रक में सात शैक्षिक क्षेत्रों– कृषि, कला, वाणिज्य, विज्ञान एवं तकनीकी, गृह–विज्ञान तथा ह्यूमेनिटिज्य से संबंधित 98 शैक्षिक विषयों का अध्ययन सम्भव है। यह पत्रक स्वयं प्रशासित किया जाता है। यह समूह तथा व्यक्तिगत रूप से प्रशासित किया जा सकता है। समय–सीमा 5 से 7 मिनट रखी गई है। इस पत्रक का उद्देश्य माध्यमिक स्तर और महाविद्यालीय स्तर पर पढ़ने वाले छात्रों को शैक्षिक परामर्श एवं निर्देशन देना है।

सारांश

अवधान का अर्थ व परिभाषा :– अवधान मानसिक शक्ति न होकर मानसिक प्रक्रिया है।

अवधान की विशेषताऐं :– 1) मानसिक सक्रियता आवश्यक है।
2) शारीरिक व मानसिक तत्परता आवश्यक है।
3) अवधान का विस्तार संकुचिलत है।
4) अवधान चंचल है।
5) अवधान अस्थिर होता है।
6) अवधान में प्रयोजनता, चयनात्मक प्रक्रिया है।
7) अवधान में सजीवता होती है।
8) अवधान में समायोजनता होती है।

अवधान के प्रकार– जे. एस. रॉस के अनुसार अवधान के प्रकार –

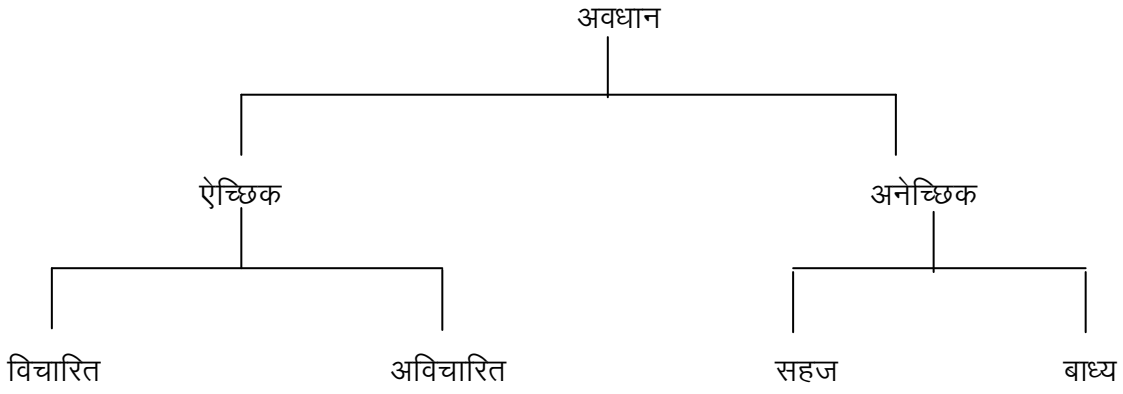

अवधान भंग होने के कारण

अवधान भंग होने के उपाय व उपचार

अवधान विस्तार ज्ञान करने हेतु उपयोग – मुख्य दो दशाऐं :

1. बाह्य वस्तुगत् दशायें
2. आंतरिक या आत्मगत् दशायें

रूचि अर्थ एवं परिभाषा :

मेक्डूगल के अनुसार – ''रूचि गुप्त अवधान है, अवधान सक्रिय रूचि है।''

रॉस के अनुसार – अवधान एवं रूचि एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।''

रूचि के प्रकार –

1) जन्मजात रूचि

2) अर्जित रूचि

पाठ्गत प्रश्न

प्रश्न–1 रूचि की एक परिभाषा बताइयें।

प्रश्न–2 रूचि के प्रकार बताइयें।

प्रश्न–3 रूचि की कोई दो विशेषताएं लिखिये?

प्रश्न–4 किसी वस्तु पर.....केंद्रित करना ध्यान है।

प्रश्न–5 अवधान के मुख्य प्रकारों के नाम बताइए।

प्रश्न–6 अनुचित वातावरण अवधान में.....डालता है।

– – – –

पत्राचार पाठ्यक्रम
माध्यमिक शिक्षा मण्डल, मध्यप्रदेश, भोपाल
(द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित)
डिप्लोमा इन एज्युकेशन
विषय – शिक्षा मनोविज्ञान
द्वितीय वर्ष
प्रश्न पत्र – छटवां

इकाई–4 : अधिगम में अभिप्रेरणा। **निर्धारित अंक – 7**

विषयांश –

4.1 अर्थ एवं प्रकार।
4.2 अभिप्ररेणा के सिद्धांत।
4.3 अभिप्ररेणा का सीखने में महत्व।
4.4 अभिप्रेरणा की विधियां।

प्रिय छात्राध्यापक!

पिछले अध्याय में आपने अवधान और रूचि के विषय में जानकारी प्राप्त की। प्रस्तुत अध्याय में अधिगम में अभिप्रेरणा का अर्थ, प्रकार एवं सिद्धांत के विषय में जानकारी दी गई है। अभिप्रेरणा का सीखने में महत्व एवं विधियों के विषय में जानकारी दी जा रही है।

4.1 अर्थ एवं प्रकार :–

''घोड़े को पानी तक ले जा सकते है परंतु उसे पानी पीने के लिये विवश नहीं कर सकते।'' अतः अभिप्ररेणा की आवश्यकता है जिससे अधिगमार्थी सीखने में रूचि लेने लगे।

प्रेरणा के शाब्दिक और मनोवैज्ञानिक अर्थों में अन्तर है। प्रेरणा के शाब्दिक अर्थ में हमें किसी कार्य को करने का बोध होता है। इस अर्थ में हम किसी भी उत्तेजना को प्रेरणा कह सकते है। क्योंकि उत्तेजना के अभाव में किसी प्रकार की प्रतिक्रिया संभव नहीं है।

गुड के अनुसार– ''प्रेरणा कार्य को प्रारंभ करने, जारी रखने और नियमित करने की प्रक्रिया है।''

शिक्षा एक जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है तथा प्रत्येक क्रिया के पीछे एक बल कार्य करता है जिसे हम प्रेरक बल कहते है। इस संदर्भ में प्ररेणा एक बल है जो प्राणी को कोई निश्चित व्यवहार या निश्चित दिशा में चलने के लिये बाध्य करती है।

प्रेरणा के प्रकार :–

प्रेरणा दो प्रकार की होती हैः–

1. **आन्तरिक प्रेरणा** (Intrinsic) :– इस प्रेरणा में बालक किसी कार्य को अपनी स्वयं की इच्छा से करता है। इस कार्य को करने से उसे सुख और संतोष प्राप्त होता है।
2. **बाह्य प्रेरणा** (Extrinsic) :– इस प्रेरणा में बालक किसी कार्य को अपनी स्वयं की इच्छा से न करके, किसी दूसरे की इच्छा या बाह्य प्रभाव के कारण करता है। इस कार्य को करने से उसे किसी वांछनीय या निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति होती है।

4.2 अभिप्रेरणा के सिद्धांत :–

1. **मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत** :– मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत अहं तथा व्यक्ति की आत्मधारणा पर बल देते है। अहं व्यक्ति की उत्तेजनाओं अर्थात अचेतन के आरंभिक भाग का नियमन करता है। इस भाग में अनियमित सुख भोग की आकांक्षा प्रवृत्तियां विद्यमान रहती है।
2. **ज्ञानवादी सिद्धांत** :– इस अभिप्रेरणा के ज्ञानवादी सिद्धांत घटनाओं के ज्ञान तथा पूर्वज्ञान पर केन्द्रित है। इसके अनुसार हम समझ विचार तथा निर्णय द्वारा उन सापेक्षित मूल्यों को चुन लेते है जो हमारे व्यवहार को अनुशासित करते हे। हम उन विश्वासों, विचारों तथा आशाओं का निर्माण करते है जो हमारे लक्ष्य अनुगामी व्यवहार का नियमन करते है।
3. **व्यवहारवादी सिद्धांत** :– अभिप्रेरणा की धारणाएं मुख्य रूप से नव दृढ़ता के सिद्धांत पर आधारित है। व्यवहार को लक्ष्य अभिमुख माना जाता है और अभिप्रेरणा को शक्ति प्रदान करने वाले तत्वों तथा उसे निर्देशित करने वाले तत्वों का अध्ययन करने के लिये विभिन्न सैद्धांतिक धारणाओं का प्रयोग किया जाता है।
4. **शारीरिक सिद्धांत** :– लार्ड रूदर फोर्ड के अनुसार ''सभी व्याख्याएं शारीरिक दृष्टि से होनी चाहिए।'' व्यक्तित्व एवं शरीर के परस्पर संबंध का अध्ययन किया है। वह भी अप्रत्यक्ष रूप से अभिप्रेरणा के शारीरिक सिद्धांत के पक्ष में है क्योंकि उन्हांने इस बात को निश्चित करने का प्रयास किया कि विभिन्न प्रकार की शरीर रचना के अनुसार आवश्यकताएं, इच्छाएं, रूचियां तथा प्रवृत्तियां भी विभिन्न होती है।
5. **क्षेत्रीय सिद्धांत** :– यह सिद्धान्त कर्ट लेविन (Kurt Levin) की देन है। उन्होंने स्थान विज्ञान (Topology) से बड़ी सहायता ली है। उनका कथन है कि किसी परिस्थिति विशेष में व्यक्ति का

व्यवहार उन तत्वों द्वारा परिचालित होता है, जो आस–पास के वातावरण के बीच में कार्यरत रहते हैं। यदि वातावरण में उसे उत्साह मिलता है, तो वह आशावान बना रहेगा, परन्तु भयपूर्ण वातावरण में निराशा ही हाथ लगेगी।

अभिप्रेरणा के उपर्युक्त सभी सिद्धांत एक दूसरे के पूरक है, एक दूसरे के विरोधी नहीं।

4.3 अभिप्ररेणा का सीखने में महत्व :–

1. **अभिप्रेरणा व्यवहार का पथ प्रदर्शन करती है:–** यह व्यक्ति के व्यवहार को इस प्रकार नया मोड़ देती है कि उसे संतुष्टि की भावना अनुभव होने लगती है।
2. **अभिप्रेरणा व्यवहार में शक्ति का संचार करती है:–** अभिप्रेरणा विद्यार्थी को सीखने में शक्ति प्रदान करतीहै। दण्ड तथा पुरस्कार आदि प्रेरणाएं सीखने के अमल में बहुत लाभदायक सिद्ध होती है।
3. **अभिप्रेरणा व्यवहार का चुनाव करती है:–** यह विद्यार्थी को कुछ परिस्थितियों में प्रतिक्रिया करने तथा दूसरों को आंखों से ओझल करने के लिये कहती है।
4. **ध्यान केन्द्रित करने में सहायक :–** अभिप्रेरणा विद्यार्थियों को प्रेरित करके उन्हें अपने ध्यान को पाठ्यविषय में केन्द्रित करने में सहायता दे सकता है।
5. **रूचि विकसित करने में सहायक :–** अभिप्रेरणा विद्यार्थियों में रूचि उत्पन्न करने की कला है।
6. **अधिक ज्ञान का अर्जन :–** अध्यापक विद्यार्थियों में उत्तम शिक्षण विधियों का प्रयोग करके अधिक ज्ञान को तीव्र गति से अर्जित करने के लिये अभिप्रेरणा प्रदान कर सकता है।
7. **चरित्र निर्माण में सहायता :–** अध्यापक विद्यार्थियों को उत्तम गुणों और आदर्शों को प्राप्त करने के लिये प्रेरित कर सकता है।
8. **सामाजिक गुणों का विकास :–** अध्यापक विद्यार्थियों को सामुदायिक कार्यों में भाग लेने के लिये प्रेरित करके उनमें सामुदायिक भावना और सामाजिक गुणों का विकास कर सकता है।
9. **अनुशासन की भावना का विकास :–** अध्यापक विद्यार्थियों में अनुशासन की भावना का विकास करके अनुशासनहीनता की समस्या का समाधान कर सकता है।
10. **व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार प्रगति :–** अध्यापक उचित प्रेरणाओं का प्रयोग करके विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुसार कार्य करने में सहायता कर सकता है।

4.4 अभिप्रेरणा की विधियां :–

फ्रेन्डसन के अनुसार ''प्रभावी अधिगम प्रभावशाली प्रेरणा पर निर्भर करता है।'' जितनी अच्छी प्रेरणा होगी उतना ही बेहतर सीखना। अतः शिक्षक को कक्षा में छात्रों को प्रेरित करने में निम्नलिखित विधियां अपनानी चाहिएः–

1. पुरस्कार एवं दण्ड।
2. प्रशंसा एवं निन्दा।
3. सफलता व असफलता।
4. प्रतियोगिता एवं सहयोग।
5. प्रगति का ज्ञान।
6. आकांक्षा का स्तर।
7. नवीनता।
8. रूचि।
9. आवश्यकताओं का ज्ञान।
10. कक्षा का वातावरण।

1. **पुरस्कार एवं दण्ड** :– छात्रों को प्रेरित करने में यह एक प्रमुख विधि है। इस प्रविधि के अनुसार अच्छे कार्यों के लिये छात्रों को पुरस्कार दिया जाना चाहिए तथा गलत कार्यों के लिये दण्ड दिया जाना चाहिए।
2. **प्रशंसा एवं निन्दा** :– इस प्रविधि में अच्छे कार्यों के लिये छात्र की प्रशंसा करनी चाहिए तथा बुरे कार्यों के लिये उसकी निन्दा करनी चाहिए।

3. **सफलता एवं असफलता** :– जीवन एक संघर्ष है। हर प्राणी को सफलता व असफलता जीवन में दोनों प्राप्त होती है। सफलता मिलने पर व्यक्ति आगे बढ़ता है लेकिन बार–बार असफल होने पर उसका मनोबल टूट जाता है।

4. **प्रतियोगिता एवं सहयोग** :– आज का युग प्रतियोगिता का युग है। प्रतियोगिता एक अच्छा प्रेरक है। इस भावना से प्रेरित होकर व्यक्ति अपने कार्य को मेहनत से करता है। इसी प्रकार आज के युग में बिना सहयोग के मनुष्य कार्य नहीं चला सकता। मिलजुल कर कार्य करने से कार्य कम परिश्रम में हो जाता है।

5. **प्रगति का ज्ञान** :– प्रगति का ज्ञान होने से व्यक्ति को आगे बढ़ने में निरंतर प्रोत्साहन मिलता रहता है।

6. **आकांक्षा का स्तर :–** यह प्रविधि सफलता व असफलता पर आधारित है। बार–बार सफलता मिलने पर व्यक्ति का आकांक्षा स्तर ऊंचा होता चला जाता है।

7. **नवीनता :–** शिक्षक का यह कर्तव्य है कि वह छात्र अधिगम प्रक्रिया के लिये छात्र की रूचि कम न होने दे। इसके लिये नवीन शिक्षण विधियों एवं सहायक सामग्री का प्रयोग करना चाहिए।

8. **रूचि** :– रूचि से बढ़कर कुछ नहीं है तथा इसके अभाव में शिक्षक के सभी प्रयास विफल हो जाते है।
   किसी ने कहा है –
   "Interest is the greatest word in the dictionary of education."

9. **आवश्यकताओं का ज्ञान :–** प्रत्येक छात्र की अपनी कुछ आवश्यकताएं होती है, मूल्य होते है, आदर्श होते है, दृष्टिकोण एवं अभिक्षमताएं होती है। इन्हीं के योग से छात्र का व्यक्तित्व बनता है। बालक की मुख्य आवश्यकताएं उसके सीखने में उद्दीपक का कार्य करती है।

10. **कक्षा का वातावरण :–** कक्षा का वातावरण भी स्वयं में एक अच्छा अभिप्रेरक है। कक्षा वातावरण छात्र के पूरे व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। शिक्षक के अच्छे व्यवहार से कक्षा का वातावरण प्रेरणादायक व आनन्दायक महसूस होता है।

इकाई का सारांश :–

जीवन के हर क्षेत्र में तथा कार्यों के चरणों में अभिप्रेरणा का प्रमुख हाथ होता है। इसलिए हमारे जीवन मं सफलता तथ प्राप्ति अभिप्रेरणा पर ही निर्भर करती है। प्रेरणा विद्यार्थियों में पढ़ाई तथा अन्य कार्यों के लिये रूचि पैदा करने तथा उनमें जोश भरने की कला है।

प्रेरणा के प्रकारः–

1. सकारात्मक।
2. नकारात्मक।

प्रेरणा के सिद्धांतः–

1. मनोविश्लेषणात्मक सिद्धांत।
2. ज्ञानवादी सिद्धांत।
3. व्यवहारवादी सिद्धांत।
4. शारीरिक सिद्धांत।

अभिप्ररेणा का सीखने में महत्व :–

1. अभिप्रेरणा व्यवहार का पथ प्रदर्शन करती है।
2. अभिप्रेरणा व्यवहार में शक्ति का संचार करती है।
3. अभिप्ररेणा व्यवहार का चुनाव करती है।
4. ध्यान केन्द्रित करने में सहायक।
5. रूचि विकसित करने में सहायक।
6. अधिक ज्ञान का अर्जन।
7. चरित्र निर्माण में सहायता।
8. सामाजिक गुणों का विकास।

अभिप्रेरणा की विधियां :–

1. पुरस्कार एवं दण्ड।
2. प्रशंसा एवं निन्दा।
3. सफलता व असफलता।
4. प्रतियोगिता एवं सहयोग।
5. प्रगति का ज्ञान।
6. आकांक्षा का स्तर।
7. नवीनता।
8. रूचि।
9. आवश्यकताओं का ज्ञान।
10. कक्षा का वातावरण।

पाठ्गत प्रश्न

प्र. 1 अभिप्रेरणा के प्रकार बताइये?

प्र. 2 अभिप्रेरणा के विभिन्न सिद्धांतों के नाम लिखियें?

प्र. 3 पुरस्कार एवं दण्ड छात्रों को प्रेरित करने में किस प्रकार सहायता करता हैं?

प्र. 4 कक्षा का वातावरण किस प्रकार छात्र के व्यक्तित्व को प्रभावित करता हैं?

———

पत्राचार पाठ्यक्रम
माध्यमिक शिक्षा मण्डल, मध्यप्रदेश, भोपाल
(द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित)
डिप्लोमा इन एज्युकेशन
विषय – शिक्षा मनोविज्ञान
द्वितीय वर्ष
प्रश्न पत्र – छठवां

इकाई – 5 स्मृति व विस्मृति **अंक–7**

विषयांश–

5.1 स्मृति का अर्थ एवं उसके अवयव।
5.2 अच्छी स्मृति के लक्षण एवं उन्नति के उपाय।
5.3 विस्मृति का कारण, महत्व।
5.4 विस्मृति कम करने के उपाय।

प्रिय छात्राध्यापक!

पिछली इकाई में आपने अधिगम में अभिप्रेरणा पढ़ा। प्रस्तुत इकाई में स्मृति एवं विस्मृति की परिभाषा, लक्षण एवं महत्व के विषय में जानकारी दी गई हैं। इकाई के अन्त में पुनरावलोकन बिन्दु तथा पाठगत प्रश्न भी दिये गये हैं। हम आशा करते है कि दिए गए निर्देशानुसार अध्ययन करके आप संपूर्ण पाठ को भली भांति समझ सकेंगे।

5.1 स्मृति का अर्थ व परिभाषा :–

स्मृति एक मानसिक क्रिया है। स्मृति का आधार अर्जित अनुभव है, इनका पुनरूत्पादन परिस्थिति के अनुसार होता है। हमारे बहुत से मानसिक संस्कार स्मृति के माध्यम से ही जाग्रत होते है।

स्र्टट एवं ओकडन के अनुसार स्मृति एक जटिल शारीरिक और मानसिक प्रक्रिया है जिसे हम थोड़े शब्दों में इस प्रकार स्पष्ट कर सकते है कि हम किसी वस्तु को छूते, देखते, सुनते या सूंघते है तब हमारे ज्ञात वाहक तन्तु (Sensory Nerves) उस अनुभव को हमारे मस्तिष्क के ज्ञान केन्द्र (Sensory Centre) में पहुंचा देते है। ज्ञान केन्द्र में उस अनुभव की प्रतिमा बन जाती है जिसे 'छाप' (Engram)

कहते है। यह छाप वास्तव में उस अनुभव का स्मृति चिन्ह (Memory Trace) होती है जिसके कारण मानसिक रचना के रूप में कुछ परिवर्तित हो जाता है। यह अनुभव कुछ समय तक हमारे चेतन मन में रहने के बाद अचेतन मन में चला जाता है और हम उसको भूल जाते है। उस अनुभव के अचेतन मन में संचित रखने और चेतन मन में लाने की प्रक्रिया को स्मृति कहते है। दूसरे शब्दों में पूर्व अनुभवों को अचेतन मन में संचित रखने और आवश्यकता पड़ने पर चेतन मन में लाने की शक्ति को स्मृति कहते है।

1. वुडवर्थ– ''जो बात पहले सीखी जा चुकी है, उसे स्मरण रखना ही स्मृति है।''
2. स्टाउट– ''स्मृति एक आदर्श पुनरावृत्ति है।''
3. मैक्डूगल– ''स्मृति से तात्पर्य अतीत की घटनाओं की कल्पना करना और इस तथ्य को पहचान लेना भी ये अतीत के अनुभव है।''

स्मृति के अवयव (अंग) :–

स्मृति एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है। वुडवर्थ के अनुसार स्मृति या स्मरण की पूर्ण क्रिया के निम्नांकित अंग, पद या खंड होत हैः–

1. **सीखना –** स्मृति का पहला अंग है सीखना हम जिस बात को याद रखना चाहते है उसको हमे सबसे पहले सीखना पड़ता है। गिलफोर्ड का कथन है– ''किसी बात को भली भांति याद रखने के लिये अच्छी तरह सीख लेना आधी से अधिक लड़ाई जीत लेना है।''
2. **धारण –** स्मृति का दूसरा अंग है धारण। इसका अर्थ है सीखी हुई बात को मस्तिष्क में संचित रखना। हम जो बात सीखते है वह कुछ समय के बाद हमारे अचेतन मन में चली जाती है। वहां वह निष्क्रीय दशा में रहती है। इस दशा में वह कितने समय तक संचित रह सकती है, यह व्यक्ति की धारण शक्ति पर विशेष निर्भर रहता है। रायबर्न का मत है– ''अधिकांश व्यक्तियों की धारण शक्ति में कोई परिवर्तन नही होता है।'' परिवर्तन न होने के बावजूद भी कुछ बाते ऐसी है जो हमें अपने अनुभव को अधिक समय तक स्मरण रखने में सहायता देती है। यथा –
   (i) स्वस्थ व्यक्ति सीखी हुई बात को अधिक समय तक स्मरण रखता है।
   (ii) अधिक अच्छी विधि से सीखी हुई बातें अधिक समय तक स्मरण रहती है।
   (iii) सीखी हुई बात को जितना अधिक दोहराया जाता है उतने ही अधिक समय तक वह स्मरण रहती है।
   (iv) रूचि और ध्यान से सीखी जाने वाली बात अधिक समय तक स्मरण रहती है।
   (v) कठिन और जटिल बात की अपेक्षा सरल और रोचक बात अधिक समय तक स्मरण रहती है।
   (vi) अत्यधिक दुख, सुख, भय, निराशा आदि की बात मस्तिष्क पर इतनी गहरी छाप अंकित कर देती है कि वे बहुत समय तक स्मरण रहती है।

3. **पुनः स्मरण** :– स्मृति का तीसरा अंग है पुनः स्मरण। इसका अर्थ है सीखी हुई बात को अचेतन मन से चेतन मन में लाना। जो बात जितनी अच्छी तरह धारण की गई है उतनी ही सरलता से उसका पुनः स्मरण होता है पर ऐसा सदैव नहीं होता है। भय, चिन्ता, शीघ्रता परेशानी आदि पुनः स्मरण में बाधा उपस्थित करते है। बालक भय के कारण भली भांति पाठ को अच्छी तरह नहीं सुन पाता है। हम जल्दी में काम करना भूल जाते है।
4. **पहचान** :– स्मृति का चौथा अंग है पहचान। इसका अर्थ है फिर याद आने वाली बात में किसी प्रकार की गलती न करना। उदाहरण– हम पांच वर्ष पूर्व मोहन नामक व्यक्ति से दिल्ली में मिले थे। जब हम उससे फिर मिलते है तब उसके संबंध में सब बातों का ठीक–ठीक पुनः स्मरण हो जाता है। हम यह जानने में किसी प्रकार की गलती नहीं करते है कि वह कौन है, उसका क्या नाम है, हम उससे कब, कहां और क्यों मिले थे आदि।

5.2 अच्छी स्मृति के लक्षण :–

जीवन में वही व्यक्ति सफलता के शिखर पर शीघ्र पहुंचता है जिसकी स्मृति अच्छी होती है। ऐसा व्यक्ति भूतकाल की घटनाओं का स्मरण कर, वर्तमान में उनका लाभ उठाकर, भविष्य को अच्छा बनाता है।

स्टाउट के अनुसार ''अच्छी स्मृति में निम्नलिखित गुण, लक्षण या विशेषताएं होती हैः–

1. **शीघ्र अधिगम** :– अच्छी स्मृति का पहला गुण है जल्दी सीखना या याद होना। जो व्यक्ति किसी बात को शीघ्र सीख लेता है उसकी स्मृति अच्छी समझी जाती है।
2. **उत्तम धारण शक्ति** :– अच्छी स्मृति का दूसरा गुण है। सीखी हुई बात को बिना दोहराए हुए देर तक स्मरण रखना। जो व्यक्ति एक बात को जितने अधिक समय तक मस्तिष्क में धारण रख सकता है उसकी स्मृति उतनी ही अधिक अच्छी होती है।
3. **शीघ्र पुनः स्मरण** :– अच्छी स्मृति का तीसरा गुण है। सीखी हुई बात का शीघ्र याद आना। जिस व्यक्ति को सीखी हुई बात जितनी जल्दी याद आती है उसकी स्मृति उतनी ही अधिक अच्छी होती है।
4. **शीघ्र पहचान** :– अच्छी स्मृति का चौथा गुण है शीघ्र पहचान। किसी बात का शीघ्र पुनः स्मरण ही पर्याप्त नहीं है। इसके साथ यह भी आवश्यक है कि आप शीघ्र ही यह जान जाये कि आप जिस बात को स्मरण करना चाहते है वही बात आपको याद आई है।
5. **अनावश्यक बातों की विस्मृति** :– अच्छी स्मृति का पांचवा गुण है अनावश्यक या व्यर्थ की बातों को भूल जाना। यदि ऐसा नहीं है तो मस्तिष्क को व्यर्थ में बहुत सी ऐसी बाते स्मरण रखनी पड़ती है जिनकी भविष्य में कभी आवश्यकता नही पड़ती है। वकील मुकदमें के समय उससे

संबंधित सब बातों को याद रखता है पर उसके समाप्त हो जाने पर उसमें से अनावश्यक बातों को भूल जाता है।

6. **उपयोगिता –** अच्छी स्मृति का अन्तिम गुण उपयोगिता है। इसका अभिप्राय यह है कि वही स्मृति अच्छी होती है जो अवसर आने पर उपयोगी सिद्ध होती है। यदि परीक्षा देते समय बालक स्मरण की हुई सब बातों को लिखने में सफल हो जाता है तो उसकी स्मृति उपयोगी है अन्यथा नहीं।

स्मृति की उन्नति के उपाय :–

एवेलिंग के अनुसार ''वास्तव में स्मृति में उन्नति हमारी स्मरण करने की विधियों में उन्नति के अतिरिक्त और कुछ नहीं''। इस कथन की सत्यता के बावजूद भी कुछ उपाय या नियम ऐसे है जो स्मृति की उन्नति में सहायता देते हैः–

1. **दृढ़ निश्चय** :– बालक जिस बात को याद करना चाहते है उसे याद करने के लिये दृढ़ निश्चय होना चाहिए।
2. **स्पष्ट ज्ञान** :– बालक जिस बात का स्मरण करना चाहते है उसका लाभ और उद्देश्य उन्हें स्पष्ट रूप से ज्ञात होना चाहिए।
3. **प्रोत्साहन** :– बालकों को पाठ याद करने के लिए विभिन्न विधियों का प्रयोग करने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिए।
4. **पहले से समझना** :– बालकों को जो पाठ याद करने के लिये दिया जाये उसका अर्थ उन्हें पहले ही पूर्ण रूप से समझा दिया जाना चाहिए।
5. **रूचि उत्पन्न करना** :– बालकों को स्मरण करने के लिए जो पाठ दिया जाये उसमें उनकी रूचि होनी चाहिए या रूचि उत्पन्न की जानी चाहिए।
6. **पूर्व ज्ञान पर आधारित** :– बालकों को जो नवीन तथ्य बताये जाये उनका उनके पूर्व ज्ञान से अधिक से अधिक संबंध स्थापित किया जाना चाहिए। पाठ के शिक्षण के समय भी उसमें आने वाले तथ्यों को दूसरे तथ्यों से संबंधित किया जाना चाहिए।
7. **स्मरण के अधिक अवसर** :– बालकों की स्मरण करने की क्रिया, निष्क्रिय न हो कर सक्रिय होनी चाहिए। अतः स्मरण करने के समय उनको अपनी ज्ञानेन्द्रियों का अधिक से अधिक प्रयोग करने का अवसर दिया जाना चाहए।
8. **दोहराना** :– बालकों द्वारा स्मरण किया गया पाठ कुछ–कुछ समय के पश्चात दोहराया जाना चाहिए।
9. **संवेगात्मक स्थिरता** :– पाठ याद करने के समय बालाकों में भय, क्रोध, कष्ट, थकान, परेशानी आदि नहीं होनी चाहिए। अन्यथा उन्हें पाठ स्मरण करने में बहुत देर लगती है और स्मरण करने के बाद वे उसे शीघ्र भूल जाते है।

10. **एकाग्रता** :– रायबर्न के अनुसार इस बात का पूर्ण प्रयास किया जाना चाहिए कि बालक अपने पाठ को एकाग्रचित्त हो कर याद करें।
11. **स्मरण विधियां अपनाना :–** कोलेसनिक के अनुसार स्मृति प्रशिक्षण की तीन मुख्य विधियां हैः–
    1. निरीक्षण शक्ति का विकास करना।
    2. तार्किक शक्ति को बलवती बनाना।
    3. निर्णय की प्रक्रिया में उन्नति करना।

यदि बालक इन नियमों और विधियों के अनुसार स्मरण करने का अभ्यास करें तो वे अपनी स्मृति को निश्चित रूप से प्रशिक्षित करके अपनी स्मरण शक्ति उन्नत कर सकते है। मैक्ड्गल का यह कथन अक्षरशः सत्य है ''अभ्यास द्वारा स्मृति में अत्यधिक उन्नति की जा सकती है।''

5.3 विस्मृतिः–

स्मृति की भांति विस्मृति भी एक मानसिक क्रिया है। अन्तर केवल इतना है कि विस्मृति एक निष्क्रीय नकारात्मक क्रिया है। स्मृति के साथ विस्मृति का अध्ययन भी महत्वपूर्ण है। यदि विस्मृति अधिक होने लगती है तो यह व्यक्ति में असामान्य व्यवहार पैदा करती है।

जब हम कोई नई बात सीखते हैं या नया अनुभव प्राप्त करते हैं तब हमारे मस्तिष्क में उसका चित्र अंकित हो जाता हैं। हम अपनी स्मृति की सहायता से उस अनुभव को अपनी चेतना में फिर लाकर उसका स्मरण कर सकते हैं पर कभी–कभी हम ऐसा करने में सफल नहीं होते हैं। हमारी यही असफल क्रिया – 'विस्मृति' कहलाती है। दूसरे शब्दों में ''भूतकाल के किसी अनुभव को वर्तमान चेतना में लाने की असफलता को 'विस्मृति' कहते हैं।

परिभाषाएः–

1. **मन –** ''सीखी हुई बात को स्मरण रखने व पुनः स्मरण करने की असफलता को विस्मृति कहते है।''
2. **ड्वर –** ''किसी समय प्रयास करने पर भी किसी पूर्व अनुभव का स्मरण करने या पहले सीखे हुए किसी कार्य को करने में असफलता।''
3. **प्रायड –** ''विस्मरण वह प्रवृत्ति है जिसके द्वारा दुखद अनुभवों को स्मृति से अलग कर दिया जाता है।

विस्मृति के कारण :–

विस्मृति के कारणों को दो भागों में विभक्त किया गया है।

(अ) सैद्धांतिक कारण – बाधा, दमन और अनाभ्यास के सिद्धांत।

(ब) सामान्य कारण – समय का प्रभाव, रूचि क अभाव, विषय की मात्रा इत्यादि।

इन कारणों का क्रमबद्ध वर्णन निम्नानुसार हैः–

1. **बाधा का सिद्धांत** :– इस सिद्धांत के अनुसार यदि हम एक पाठ को याद करने के बाद दूसरा पाठ याद करने लगते है, तो हमारे मस्तिष्क में पहले पाठ के स्मृति चिन्हों में बाधा पड़ती है। फलस्वरूप वे निर्बल होते चले जाते है और हम पहले पाठ को भूल जाते है।
2. **दमन का सिद्धांत** :– इस सिद्धांत के अनुसार हम दुखद और अपमान जनक घटनाओं को याद नहीं रखना चाहते है। अतः हम उनका दमन करते है। परिणामतः वे हमारे अचेतन मन में चली जाती है और हम उनको भूल जाते है।
3. **अनाभ्यास का सिद्धांत** :– थार्नडाइक एवं एबिंगहॉस ने विस्मृति का कारण अभ्यास का अभाव बताया है। यदि हम सीखी हुई बात का बार–बार अभ्यास नहीं करते है तो हम उसको भूल जाते है।
4. **समय का प्रभाव** :– हैरिस के अनुसार – सीखी हुई बात पर समय का प्रभाव पड़ता है। अधिक समय पहले सीखी हुई बात अधिक और कम समय पहले सीखी हुई बात कम भूलती हैं।
5. **रूचि, ध्यान व इच्छा का अभाव** :– जिस कार्य को हम जितनी कम रूचि, ध्यान और इच्छा से सीखते है उतनी ही जल्दी हम उसको भूलते है। स्टाउट के अनुसार– जिन बातों के प्रति हमारा ध्यान रहता है उन्हें हम स्मरण रखते है।
6. **विषय का स्वरूप** :– हमें सरल सार्थक, लाभप्रद बातें बहुत समय तक स्मरण रहती है। इसके विपरीत हम कठिन, निरर्थक और हानिप्रद बातों को शीघ्र ही भूल जाते है। मार्सेल के अनुसार – निरर्थक विषय की तुलना में सार्थक विषय का विस्मरण बहुत धीरे–धीरे होता है।
7. **विषय की मात्रा** :– विस्मरण, विषय की मात्रा के कारण भी होता है। हम छोटे विषय को देर से और लम्बे विषय को जल्दी भूलते है।
8. **सीखने में कमी** :– हम कम सीखी हुई बात को शीघ्र और भली प्रकार सीखी हुई बात को विलम्ब से भूलते है।
9. **सीखने की दोषपूर्ण नीति** :– यदि शिक्षक, बालकों को सीखने के लिए उचित विधियों का प्रयोग न करके दोषपूर्ण विधियों का प्रयोग करता है, तो वे उसको थोडे ही समय में भूल जाते हैं।
10. **मानसिक आघात** :– सिर में आघात या चोट लगने से स्नायुकोष्ठ छिन्न भिन्न हो जाते है। अतः उन पर बने स्मृति चिन्ह अस्तव्यस्त हो जाते है। फलस्वरूप, व्यक्ति स्मरण की हुई बातों को भूल जाता है।
11. **मानसिक द्वन्द** :– मानसिक द्वन्द के कारण मस्तिष्क में किसी न किसी प्रकार की परेशानी उत्पन्न हो जाती है। यह परेशानी, विस्मृति का कारण बनती है।
12. **मानसिक रोग** :– कुछ मानसिक रोग ऐसे है, जो स्मरण शक्ति को निर्बल बना देते है। जिसके फलस्वरूप विस्मरण की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार का एक मानसिक रोग–दुःसाध्य उन्माद है।

13. **मादक वस्तुओं का प्रयोग** :– मादक वस्तुओं का प्रयोग मानसिक शक्ति को क्षीण कर देता है। अतः विस्मरण एक स्वाभाविक बात हो जाती है।
14. **स्मरण न करने की इच्छा** :– यदि हम किसी बात को स्मरण नहीं रखना चाहते है तो हम उसे अवश्य भूल जाते है। **स्टर्ट व ओकड़न का कथन है** ''हम बहुत सी बातों को स्मरण न रखने की इच्छा के कारण भूल जाते है।''
15. **संवेगात्मक असंतुलन** :– किसी संवेग के उत्तेजित होने पर व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक दशा में असाधारण परिवर्तन हो जाता है। उस दशा में उसे पिछली बातों का स्मरण करना और कठिन हो जाता है। बालक भय के कारण भली प्रकार याद पाठ को भी भूल जाता है। भाटिया का कथन ''संवेगात्मक असंतुलन विस्मृति के सामान्य कारण है।''

विस्मृति का महत्वः–

कालिन्स व ड्रेवर ने लिखा है ''यह सत्य है कि विस्मरण, स्मरण के विपरीत है, पर व्यावहारिक दृष्टिकोण से विस्मरण लगभग उतना ही लाभप्रद है जितना की स्मरण।''

विस्मरण लाभप्रद क्यों? बालक की शिक्षा में उसका कार्य महत्व और आवश्यकता क्या है? हम इनसे संबंधित तथ्यों पर निम्नांकित पंक्तियों में प्रकाश डाल रहे हैः–

1. **क्षणिक महत्व की बातों को भुलाना** :– बालक, विद्यालय में ऐसी अनेक बातें सीखता है, जो उसके लिए क्षणिक महत्व की होती है। अतः उसके लिए उन्हें स्थायी रूप से स्मरण न रख कर भुला देना ही अच्छा है। **कोलेसनिक के अनुसार** ''जीवन के अनेक अनुभवों का केवल क्षणिक महत्व होता है और वे स्मरण रखने के योग्य नहीं होते है।''
2. **समान रूप से अनुपयोगी बातों को भुलाना** :– बालक प्रत्येक दिन अनेक बातें सीखता है। वे सब उसके लिए समान रूप से उपयोगी नहीं होती है। अतः जैसा कि **क्रो एवं क्रो** ने लिखा है– ''सीखने वाले के लिए यह जानना आवश्यक है कि वह क्या स्मरण रखे और क्या भुला दे?''
3. **अस्त व्यस्तता से बचाव** :– यदि बालक के मस्तिष्क में सभी बातों के स्मृति चिन्ह अंकित होते चले जाएं तो उसके विचार पूर्ण रूप से अस्त व्यस्त हो जायेंगे। अतः अपने विचारों को व्यवस्थित रूप प्रदान करने के लिए उसे कुछ बातों का भुलाना अनिवार्य है। **स्र्टट एवं ओकडन** का मत है यदि हम अपने विचारों में व्यवस्था और बल चाहते है तो हमारे लिए विस्मरण आवश्यक है।
4. **दुखद अनुभवों को भूलना** :– बालक को अपने विद्यालय और पारिवारिक जीवन में समय–समय पर कटु अनुभव होते है। ये अनुभव स्मरण की प्रक्रिया में बाधा उपस्थित करते है। अतः इनका विस्मरण करके ही बालक विद्यार्जन के लक्ष्य की प्राप्ति कर सकता है। भाटिया के शब्दों में ''भली प्रकार स्मरण करने के लिए हमें बहुत कुछ भुला देना आवश्यक है।

5. **भाषा शिक्षण में उपयोगी** :– बालक शुद्ध लेखन और शुद्ध उच्चारण के अतिरिक्त विभिन्न विषयों में कुछ सीमा तक सफलता प्राप्त करने का इच्छुक रहता है। वह गलत कार्यों और गलत विधियों का विस्मरण करके ही ऐसा कर सकता है। **मन** के अनुसार ''उचित प्रतिक्रया का अर्जन को करने के लिये हमें अनुचित प्रतिक्रियाओं को बहुधा भूल जाना आवश्यक है।''
6. **सीमित क्षेत्र का उपयोग** :– बालक का स्मृति क्षेत्र सीमित होता है। अतः यदि वह सब बातों को स्मरण रखे तो उसे अपने स्मृति क्षेत्र में नवीन बातों को स्थान देना असंभव हो जायेगा। इस दृष्टि से उसे पुरानी बातों का विस्मरण करना आवश्यक है। **कोलिन्स एवं ड्वेर** का कथन है ''विस्मरण किसी भी प्रकार के लाभप्रद अधिगम का आवश्यक अंग है।''
7. **पुरानी बातों को भूलकर नई बातों को सीखना** :– ऐसी अनेक बाते होती है, जिनको बालक पुरानी बातों को भूलकर ही सीख सकता है। जैसे– पढ़ने या लिखने की उपयुक्त विधियाँ। अतः उसे उन विधियों को भुला देना आवश्यक है, जिनका प्रयोग वह करता चला आ रहा है। **वुडवर्थ** के अनुसार ''नई बातों का सीखना पुरानी बातों के स्मरण में बाधा डालता है और पुरानी बातों का स्मरण नई बातों को सीखने में बाधा डालता है।''

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि बालक की शिक्षा में विस्मरण का स्थान अति महत्वपूर्ण है। वह विस्मरण करके ही शिक्षा संबंधी नई बातों को सीख सकता है। रिबट ने ठीक लिखा है ''स्मरण करने की एक शर्त यह है कि हमें विस्मरण करना चाहिए।''

5.4 विस्मृति कम करने के उपाय :–

विस्मृति का अर्थ है कि ''अधिक समय तक स्मरण रखने या स्मृति में धारण रखने की क्षमता का न होना। अतः विस्मृति को कम करने या धारण शक्ति में उन्नति करने के लिए निम्नांकित उपायों को प्रयोग में लाया जा सकता हैः–

1. **पाठ की विषयवस्तु :– कोलोस्निक का मत है** – पाठ की विषयवस्तु अर्थ–पूर्ण, क्रमबद्ध और बालक की मानसिक योग्यता के अनुरूप होनी चाहिए, क्योंकि इस प्रकार की विषयवस्तु की विस्मृति की गति और मात्रा बहुत कम होती है। इसके अतिरिक्त पाठ में आवश्यकता से अधिक तथ्य, तिथियाँ और विस्तृत सूचनाएं नहीं होनी चाहिए क्योंकि इनकी विस्मृति की गति और मात्रा बहुत तीव्र होती है।

2. **पूरे पाठ का स्मरण** :– बालक को पूरा पाठ सोच समझ कर याद करना चाहिए। जब तक उसे पूरा पाठ याद न हो जाए, तब तक उसे स्मरण करने का कार्य स्थगित नहीं करना चाहिए। साथ ही उसे पाठ को आंशिक रूप से स्मरण नहीं करना चाहिए ऐसा करने से पाठ का भूल जाना आवश्यक है।

3. **पाठ का अधिक स्मरण** :– पाठ स्मरण हो जाने के बाद भी बालक को उसे कुछ समय तक और स्मरण करना चाहिए। इसका कारण बताते हुए नन ने लिखा है ''पाठ स्मरण हो जाने के बाद जितना अधिक स्मरण किया जाता है उतना ही अधिक वह स्मृति में धारण रहता है।

4. **बालक का स्मरण करने में ध्यान** :– पाठ को स्मरण करते समय बालक का अपना पूर्ण ध्यान उस पर केन्द्रित रखना चाहिए। **वुडवर्थ** के शब्दों में ''सीखने वाला जितना अधिक ध्यान देता है उतनी ही जल्दी वह सीखता है और बाद में उतनी ही अधिक देर में वह भूलता है।
5. **अधिक समय तक स्मरण रखने पर विचार** :– बालक को पाठ यह विचार करके स्मरण करना चाहिए कि उसे उसको बहुत समय तक याद रखना है। तभी वह उसे शीघ्र भूलने की संभावना का अंत कर सकता है। **बोरिंग , लैगफील्ड एवं वील्ड** ने लिखा है – ''अधिक समय तक स्मरण रखने के विचार से याद किया हुआ पाठ अधिक समय तक स्मरण रहता है।

6. **विचार साहचर्य के नियमों का पालन** :– पाठ याद करते समय बालक को विचार साहचर्य के नियमों का पालन करना चाहिए। उसे नवीन तथ्यों और घटनाओं का उन तथ्यों और घटनाओं से संबंध स्थापित करना चाहिए, जिनको वह जानता है। ऐसा करने से वह संभवतः पाठ का कभी विस्मरण नहीं करेगा।

7. **पूर्ण व अन्तरयुक्त विधियों का प्रयोग** :– बालक को पाठ याद करने के लिए पूर्ण और अन्तरयुक्त विधियों का प्रयोग करना चाहिए। इसका कारण यह है कि खण्ड और अन्तरहीन विधियों की अपेक्षा इन विधियों से याद किए गए पाठ का विस्मरण कम होता है।

8. **सस्वर वाचन** :– बालक को पाठ बोल–बोल कर स्मरण करना चाहिए। **बुडवर्थ** के शब्दों में इसका कारण यह है ''सक्रिय सस्वर वाचन के पश्चात विस्मरण की गति धीमी होती है।''

9. **स्मरण के बाद विश्राम** :– बालक को पाठ स्मरण करने के उपरांत कुछ समय तक विश्राम अवश्य करना चाहिए। ताकि पाठ के स्मृति चिन्ह उसके मस्तिष्क में स्पष्ट रूप से अंकित हो जाए। वुडवर्थ के शब्दों में ''सीखने के बाद कुछ समय तक विश्राम का महत्व अनेक परीक्षणों द्वारा सिद्ध किया गया है।''

10. **पाठ की पुरावृत्ति** :– पाठ को स्मरण करने के बाद बालक को उसे थोड़े–थोड़े समय के उपरांत दोहराते रहना चाहिए। पाठ की जितनी ही अधिक पुरावृत्ति की जाती है उतनी ही अधिक देर से

वह भूलता है। **वुडवर्थ** ने लिखा है ''पुनः अधिगम स्मृति चिन्हों को सजीव बनाता है और विस्मरण को कम करता है।

11. **स्मरण करने के नियमों का प्रयोग :–** बालक को विस्मरण कम करने के लिए स्मरण करने की मितव्ययी विधियों का प्रयोग करना चाहिए। इसकी पुष्टि करते हुए वुडवर्थ ने लिखा है ''स्मरण के लिए मितव्ययता के नियम धारण शक्ति के लिए भी लागू होते हैं।

इकाई सारांश

बुडवर्थ के अनुसार ''जो बात पहले सीखी जा चुकी हैं, उसे स्मरण रखना ही स्मृति हैं।

स्मृति एक जटिल शारीरिक और मानसिक प्रक्रिया हैं। स्मृति का मुख्य कार्य हैं हमें किसी पूर्व अनुभव का स्मरण कराना।

बुडवर्थ के अनुसार स्मृति के चार अंग हैं –

1. सीखना
2. धारण
3. पुनः स्मरण
4. पहचान

अच्छी स्मृति के लक्षण निम्नलिखित हैं –

1. शीघ्र अधिगम
2. उत्तम धारण शक्ति
3. शीघ्र पुनः स्मरण
4. शीघ्र पहचान
5. अनावश्यक बातों की विस्मृति
6. उपयोतिगता

विस्मृति

''भूतकाल के किसी अनुभव को वर्तमान चेतना में लाने की असफलता को 'विस्मृति' कहते है। विस्मृति भी एक मानसिक क्रिया है, यह निष्क्रिय तथा नकारात्मक क्रिया हैं?

विस्मृति दो प्रकार की होती है –

1. सक्रिय विस्मृति 2. निष्क्रिय विस्मृति

विस्मृति का महत्व –

विस्मृति, स्मृति के विपरीत अवश्य है, पर व्यावहारिक दृष्टिकोण से उतनी ही लाभप्रद एवं आवश्यक है।

1. क्षणिक महत्व की बातों को भुलाना।
2. समान रूप से अनुपयोगी बातों को भुलाना।
3. दुःखद अनुभवों को भूलना।
4. भाषा शिक्षण में उपयोगी।
5. पुरानी बातों को भूलकर नई बातों को सीखना।

पाठ्गत प्रश्न

प्रश्न 1. स्मृति के अवयवों का वर्णन कीजिए।
प्रश्न 2. स्मृति की उन्नति के उपायों का वर्णन कीजिए।
प्रश्न 3. विस्मरण किसे कहते है?
प्रश्न 4. विस्मृति के कारण लिखिए।
प्रश्न 5. विस्मृति का महत्व लिखिए।

— — — —

पत्राचार पाठ्यक्रम
माध्यमिक शिक्षा मण्डल, मध्यप्रदेश, भोपाल
(द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित)
डिप्लोमा इन एज्युकेशन
विषय – शिक्षा मनोविज्ञान
द्वितीय वर्ष
प्रश्न पत्र – छठवां

इकाई – 6 व्यक्तित्व एवं व्यक्तित्व मापन। अंक–8

विषयांश –

6.1 अर्थ एवं प्रकार।
6.2 संतुलित व्यक्तित्व की विशेषताएं।
6.3 प्रभवित करने वाले कारक।
6.4 व्यक्तित्व मापन की विधियां।
6.5 वंशानुक्रम एवं वातावरण, अर्थ और महत्व।

प्रिय छात्राध्यापक!

गत् अध्याय में आपने स्मृति एवं विस्मृति के विषय में अध्ययन किया। प्रस्तुत अध्याय में व्यक्तित्व एवं व्यक्तित्व मापन की विधियों की जानकारी दी गई है। इसके अतिरिक्ति वंशानुक्रम एवं वातावरण का अर्थ एवं महत्व की जानकारी भी दी गई है।

6.1 व्यक्तित्व का अर्थ एवं प्रकार :–

सामान्यतः व्यक्तित्व से अभिप्राय व्यक्ति के रूप, रंग, कद, लंबाई, चौड़ाई, मोटाई, पतलापन अर्थात शारीरिक संरचना, व्यवहार तथा मृदुभाषी होने से लगाया जाता है। व्यक्तित्व में एक मनुष्य के न केवल शारीरिक और मानसिक गुणों का, वरन् उसके सामाजिक गुणों का भी समावेश होता है।

मन के शब्दों में – ''व्यक्तित्व की परिभाषा, व्यक्ति के ढांचे, व्यवहार की विधियों, रूचियों, अभिवृत्तियों, क्षमताओं, योग्यताओं और कुशलताओं के सबसे विशिष्ट एकीकरण के रूप में की जा सकती है।''

वुडवर्थ के अनुसार '' व्यक्तित्व व्यक्ति की संपूर्ण गुणात्मकता है।''

आलपोर्ट के अनुसार, ''व्यक्तित्व, व्यक्ति के भीतर के उन मनोदैहिक गुणों का गत्यात्मक संगठन है जो उसके वातावरण से अपूर्व अभियोजन को निर्धारित करता है।''

व्यक्तित्व के प्रकार :–

व्यक्तित्व का वर्गीकरण अनेक विद्वानों द्वारा अनेक प्रकार से किया गया है। इनमें से निम्न तीन वर्गीकरणों को साधारणः स्वीकार किया जाता है।

1. शरीर रचना प्रकार।
2. समाजशास्त्रीय प्रकार।
3. मनोवैज्ञानिक प्रकार।

1. **शरीर रचना प्रकार :–** जर्मन विद्वान क्रेचमर ने शरीर रचना के आधार पर व्यक्तित्व के तीन प्रकार बताए हैः–

   (i) **शक्तिहीन :–** इस प्रकार का व्यक्ति दुबला पतला और छोटे कंधो वाला होता है। उसकी भुजाएं पतली और सीना छोटा होता है। वह दूसरों की आलोचना करना पसंद करता है। पर दूसरों से अपनी आलोचना नहीं सुनना चाहता है।

   (ii) **खिलाड़ी :–** इस प्रकार के व्यक्ति का शरीर हष्ट–पुष्ट और स्वस्थ होता है। वह दूसरे व्यक्तियों से सामंजस्य करना चाहता है।

   (iii) **नाटा :–** इस प्रकार के व्यक्ति का शरीर मोटा, छोटा, गोल और चर्बी वाला होता है। वह आराम तलब व लोकप्रिय होता है।

2. **समाज–शास्त्रीय प्रकार :–** स्प्रेंगर ने व्यक्ति के सामाजिक कार्यों और स्थिति के आधार पर व्यक्तित्व के छः प्रकार बनाये है–

   (i) **सैद्धांतिक :–** इस प्रकार का व्यक्ति, व्यवहार की अपेक्षा सिद्धांत पर अधिक बल देता है। इस प्रकार के व्यक्ति दार्शनिक होते है।

   (ii) **आर्थिक :–** इस प्रकार का व्यक्ति, जीवन की सब बातों का आर्थिक दृष्टि से मूल्यांकन करता है। व्यापारी लोग इसी प्रकार के व्यक्ति होते है।

   (iii) **सामाजिक :–** इस प्रकार का व्यक्ति दया और सहानुभूति में विश्वास करता है। वह समाज कल्याण के लिये सब कुछ कर सकता है।

   (iv) **राजनीतिक :–** इस प्रकार का व्यक्ति सत्ता, प्रभुत्व और नियंत्रण में विश्वास रखने वाला होता है।

   (v) **धार्मिक :–** इस प्रकार के व्यक्ति का जीवन सादा और सरल होता है।

   (vi) **कलात्मक :–** इस प्रकार का व्यक्ति प्रत्येक वस्तु को कला की दृष्टि से देखता है।

3. **मनोवैज्ञानिक प्रकार** :– मनोवैज्ञानिक जुग ने मनोवैज्ञानिक आधार पर व्यक्तित्व के तीन प्रकार बताये है–

   1. **अन्तर्मुखी व्यक्तित्व** :– इस व्यक्तित्व के लक्षण, स्वभाव, आदते, अभिवृत्तियां, बाह्य रूप से प्रकट नहीं होते है। अन्तर्मुखी व्यक्ति अपने आप में अधिक रूचि रखते है। इनकी मानसिक शक्ति का विशेष रूप से विकास होता है। वे संकोची होने के कारण अपने विचारों को स्पष्ट रूप से व्यक्त करने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। इस व्यक्तित्व के मनुष्य दार्शनिक और विचारक होते हैं।
   2. **बहिर्मुखी व्यक्तित्व** :– इस प्रकार के व्यक्तित्व वाले व्यक्ति अपने विचारों और भावनाओं को स्पष्ट रूप से व्यक्त कर सकते है। वह संसार के भौतिक और सामाजिक लक्ष्यों में विशेष रूचि रखते है। ऐसे व्यक्ति मिलनसार तथा सहयोगी होते हैं। वे बाह्य सामंजस्य के प्रति सदैव सचेत रहते हैं और कार्यों एवं कथनों में अधिक विश्वास रखते हैं। इस व्यक्तित्व के मनुष्य अधिकांश रूप से सामाजिक, राजनैतिक या व्यापारिक नेता होते हैं।
   3. **मध्य – मुखी** – ऐसे व्यक्ति न तो अधिक अन्तर्मुखी होते हैं और न ही बहिर्मुखी होते हैं। इनकी स्थिति इन दोनों वर्गों के मध्य में होती है। दोनों के मिश्रण को ही मध्य–मुखी का नाम दिया गया है। इनका व्यवहार संतुलित होता है।

6.2 संतुलित व्यक्तित्व की विशेषताएं :–

व्यक्तित्व शब्द में अनेक विशेषताएं निहित होती हैः–

1. **आत्म चेतना** – व्यक्तित्व की पहली और मुख्य विशेषता आत्म चेतना होती है। इसी विशेषता के कारण मानव को सब जीवधारियों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है।
2. **सामाजिकता** – व्यक्तित्व की दूसरी विशेषता सामाजिकता है। मानव में आत्म चेतना का विकास तभी होता है जब वह समाज के अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर क्रिया और अन्तःक्रिया करता है।
3. **सामंजस्य** – व्यक्तित्व की तीसरी विशेषता सामंजस्यता है। व्यक्ति को न सिर्फ बाह्य वातावरण से वरन अपने स्वयं के आन्तरिक जीवन से भी सामंजस्य करना पड़ता है।
4. **निर्देशित लक्ष्य प्राप्ति** – व्यक्तित्व की चौथी विशेषता निर्देशित लक्ष्य की प्राप्ति है। मानव व्यवहार का एक निश्चित उद्देश्य होता है कि वह लक्ष्य की प्राप्ति के लिये संचालित होता है। अतः उसके व्यवहार और लक्ष्यों से अवगत होकर उसके व्यवहार का हम सहज ही अनुमान लगा सकते है।
5. **दृढ़ इच्छा शक्ति** – दृढ़ इच्छा शक्ति व्यक्ति को जीवन की कठिनाईयों से संघर्ष करके अपने व्यक्तित्व को उत्कृष्ट बनाने की क्षमता प्रदान करती है।

6. **शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य** – व्यक्तित्व की छठवीं विशेषता शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य है। उसके अच्छे व्यक्तित्व के लिये अच्छे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का होना आवश्यक है।
7. **एकीकरण** – जिस प्रकार व्यक्ति के शरीर का कोई एक अवयव अकेला कार्य नहीं कर सकता उसी प्रकार व्यक्तित्व का कोई तत्व अकेला कार्य नहीं करता है। यह तत्व है– शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सामाजिक, संवेगात्मक आदि।
8. **विकास की निरंतरता** – व्यक्तित्व की अन्तिम किन्तु महत्वपूर्ण विशेषता है– विकास की निरंतरता। जैसे–जैसे व्यक्ति के कार्यों, विचारों, अनुभवों, स्थितियों आदि में परिवर्तन होता है वैसे–वैसे उसके व्यक्तित्व के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।

6.3 प्रभावित करने वाले कारक :–

व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारक निम्न हैः–

1. वंशानुक्रम का प्रभाव – अनेक मनोवैज्ञानिक ने अपने अध्ययनों के आधार पर सिद्ध कर दिया है कि व्यक्तित्व के विकास पर वंशानुक्रम का प्रभाव अनिवार्य रूप से पड़ता है। फ्रांसिस गाल्टन ने प्रमाणित किया है कि वंशानुक्रम के कारण ही व्यक्तियों के शारीरिक और मानसिक लक्षणों में भिन्नता दिखाई देती है। स्किनर तथा हैरिमैन के शब्दों में ''मनुष्य का व्यक्तित्व स्वाभाविक विकास का परिणाम नहीं है। उसे अपने माता–पिता से कुछ निश्चित शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और व्यावसायिक शक्तियॉ प्राप्त होती हैं।
2. जैविक कारको का प्रभाव – मुख्य जैविक कारक जैसे नालिकाविहीन ग्रन्थियॉ, अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियॉ और शारीरिक रसायन का व्यक्तित्व के विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है।
3. शारीरिक रचना का प्रभाव – शारीरिक रचना के अन्तर्गत शरीर के अंगों का पारस्परिक अनुपात, शरीर की लम्बाई और भार, नेत्रों और बालों का रंग, मुखाकृति आदि किसी न किसी रूप से व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित करते हैं।
4. दैहिक प्रवृत्तियों का प्रभाव – दैहिक प्रवृत्तियों के कारण शरीर के अन्दर रासायनिक परिवर्तन होते हैं, जिनके फलस्वरूप व्यक्ति महत्वकांक्षी या आकांक्षाहीन, सक्रिय या निष्क्रिय बनता है।
5. मानसिक योग्यता का प्रभाव – व्यक्ति में जितनी अधिक मानसिक योग्यता होती है, उतना ही अधिक वह अपने व्यवहार को समाज के आदर्शों और प्रतिमानों के अनुकूल बनाने में सफल होते हैं।
6. विशिष्ठ रूचि का प्रभाव – मनुष्य की सफलता का मुख्य आधार है – उस कार्य में उसकी विशिष्ट रूचि जैसे कला या संगीत में विशिष्ट रूचि लेने वाला व्यक्ति ही कलाकार या संगीतज्ञ के रूप में उच्चतम स्थान पर पहुॅच सकता है।

7. भौतिक वातावरण का प्रभाव – भौतिक या प्राकृतिक वातावरण, व्यक्तित्व पर अलग–अलग तरह की छाप छोड़ता है। अतः लोगों की आदतों, शारीरिक बनावट, रंग, स्वास्थ्य पर स्पष्ट अंतर मिलता है।
8. सामाजिक वातावरण का प्रभाव – सामाजिक वातावरण के सम्पर्क में आने पर ही मनुष्य में परिवर्तन होने लगता है। अतः समाज उसके व्यक्तित्व का निर्माण करता है।
9. सांस्कृतिक वातावरण का प्रभाव – समाज व्यक्तित्व का निर्माण करता है। संस्कृति उसके स्वरूप को निश्चित करती है। प्रत्येक संस्कृति की अपनी मान्यता, रीति–रिवाज, धर्म–कर्म आदि होते है। मनुष्य जिस संस्कृति में जन्म लेता है, उसी के अनुरूप उसके व्यक्तित्व का स्वरूप निश्चित होता है।
10. परिवार का प्रभाव – व्यक्तित्व का निर्माण का कार्य परिवार में आरंभ होता है, यदि बालक को परिवार में प्रेम, सुरक्षा और स्वतंत्रता का वातावरण मिलता है तो उसमें साहस, स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता आदि गुणों का विकास होता है।
11. विद्यालय का प्रभाव – व्यक्तित्व के विकास पर विद्यालय की सब बातों का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है, जैसे पाठ्यक्रम, अनुशासन, शिक्षक–छात्र संबंध, खेलकूद आदि।
12. प्रभवित करने वाले अन्य कारके जैसे– बालक का पड़ोस, समूह और परिवार की इकलौती संतान, संवेगात्मक असंतुलन और माता की मृत्यु के कारण प्रेम का अभाव आदि।

6.4 व्यक्तित्व मापन की विधियां :–

व्यक्तित्व को अनेक गुणों या लक्षणों का गठन माना जाता है। इन गुणों के कारण कोई मनुष्य उत्साहपूर्ण तो कोई उत्साहहीन, कोई मिलनसार, तो कोई एकान्तप्रिय, कोई चिन्तामुक्त, तो कोई चिन्ताग्रस्त होता है।

व्यक्तित्व मापन के लिये विभिन्न प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है, जो दो दृष्टिकोणों पर आधारित है– अणुवादी दृष्टीकोण तथा सम्पूर्णवादी दृष्टिकोण।

मापन किसी भी दृष्टिकोण से किया जाये पर हमें यही मानकर चलना पड़ेगा कि व्यक्तित्व व्यक्ति के विभिन्न शीलगुणों का एक विशिष्ट संगठन है जो व्यवहार या इन गुणों द्वारा अपने को अभिव्यक्त करता है।

सामान्यतः व्यक्तित्व का मापन, दूसरे व्यक्ति के प्रभाव, विचार तथा निर्मित धारणा पर निर्भर है। व्यक्तित्व मापन की तीन प्रमुख विधियां हैः–

1. **आत्मनिष्ठ (Subjective) :–** यह विधियाँ व्यक्ति के अनुभव तथा धारणा पर निर्भर है। जीवन इतिहास, प्रश्नावली, साक्षात्कार तथा आत्मकथा लेखन ऐसी विधियां है।

2. **वस्तुनिष्ठ (Objective)** :– बाह्म व्यवहार का अध्ययन करने में वस्तुनिष्ठ विधियों का प्रयोग किया जाता है। नियंत्रित निरीक्षण, मापन, समाजमिति, तथा शारीरिक परीक्षण ऐसी ही विधियां है।
3. **प्रेक्षपण (Projective)** :– इन विधियों में उत्तेजक प्रस्तुत किये जाते है। व्यक्ति अपने अचेतन व्यवहार की अभिव्यक्ति करता है। प्रासंगिक अन्तर्बोध, बाल सम्प्रत्यय, वाक्यपूर्ति, कहानी रचना आदि ऐसी ही विधियां है।

हम यहां प्रमुख मापन विधियों का उल्लेख कर रहे हैः–

1. प्रश्नावली विधि – इस विधि में कागज पर छपे हुए कथनों या प्रश्नों की सूची होती है, जिनके उत्तर ''हाँ'' या ''नहीं'' पर निशान लगाकर या लिखकर देने पड़ते हैं। इसलिए इस विधि को 'कागज–पेंसिल परीक्षण'' भी कहते हैं। प्राप्त उत्तरों की सहायता से व्यक्तित्व का मापन किया जाता हैं इस प्रकार यह विधि प्रश्नों के उत्तरों के सहायता से व्यक्तित्व मापन की विधि है।
2. जीवन इतिहास विधि – इस विधि द्वारा किसी एक व्यक्ति की विशेषताओं, व्यवहार एवं उसके मानसिक जीवन का अध्ययन किया जाता है। यह एक प्रकार का व्यक्ति का इतिहास होता है। इसमें व्यक्ति के संबंध में उसके जीवन इतिहास, घरेलू पृष्ठभूमि, रूचियों, आवश्यकताओं, उसके कार्य–कलापों, स्वास्थ्य संबंधी जानकारी प्राप्त करने के लिए उसके मित्रों, पारिवारिक सदस्यों तथा अन्य संबंधित व्यक्तियों से मिलकर सूचनाएं एकत्रित करते हैं। इस विधि का प्रयोग प्रायः असाधारण व्यक्तियों या बालकों को समझने के लिए किया जाता है।
3. साक्षात्कार विधि – साक्षात्कार एक उद्देश्यपूर्ण वार्तालाप है। इस विधि में आमने सामने बैठकर किसी उद्देश्य को लेकर व्यक्तियों में वार्तालाप होता है।
4. क्रिया परीक्षण विधि – इस विधि द्वारा यह परीक्षण किया जाता है कि व्यक्ति, जीवन की वास्तविक परिस्थिति में किस प्रकार का कार्य या व्यवहार करता है। वह आत्म–प्रदर्शन, नेतृत्व करना, समूह के लिए कार्य करना या किस प्रकार का कार्य करना चाहता है। यह व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अध्ययन करने के लिए अति उपयोगी है।
5. परिस्थिति परीक्षण विधि – इस विधि में व्यक्ति को किसी विशेष परिस्थिति में रखकर उसके व्यवहार या किसी विशेष गुण की जांच की जाती है।
6. मानदण्ड मूल्यांकन विधि – इस विधि में व्यक्ति के किसी विशेष गुण या कार्य कुशलता का मूल्यांकन उसके सम्पर्क में रहने वाले लोगों से करवाया जाता है। उस गुण को पॉच या अधिक कोटियों में विभाजित कर दिया जाता है और मतदाताओं से उनके सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करने का अनुरोध किया जाता है।
7. व्यक्तित्व परिसूची विधि – इस विधि में व्यक्ति के जीवन से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के प्रश्नों या कथनों की सूचियॉ तैयार की जाती हैं। व्यक्ति उनके उत्तर ''हॉ'' या ''नही'' में देकर परीक्षणकर्ता के समक्ष स्वयं अपना मूल्यांकन प्रस्तुत करता है।

8. प्रक्षेपण विधि – इस विधि द्वारा व्यक्ति अपनी सुप्त इच्छाओं को जो उसके अचेतन मन में बैठ गयी है किसी नई वस्तु की ओर परिवर्तित करके प्रकट करता है। इस प्रविधि में साधारण रूप से व्यक्ति के सम्मुख उद्दीपक स्थिति प्रस्तुत की जाती है तथा उसे ऐसा अवसर प्रदान किया जाता है कि वह अपने व्यक्तिगत जीवन से संबंधित छिपी हुई बातों को उन स्थितियों के माध्यम से प्रकट कर सके।
9. अन्य विधियां व परीक्षण – कुछ अन्य विधियों द्वारा भी व्यक्तित्व मापन किया जाता है जैसे – निरीक्षण विधि, आत्मकथा विधि मनोविश्लेषण विधि, समाजमिति विधि, चित्र–कहानी परीक्षण, मौखिक प्रक्षेपण परीक्षण आदि।

6.5 वंशानुक्रम एवं वातावरण :–

अर्थ एवं महत्व– प्राणी मात्र में स्वभाविक तौर से कुछ गुण परम्परागत रूप से प्राप्त होते है। इसका अभिप्राय यह है कि बालक रंग, रूप, आकृति, विद्वता आदि में माता–पिता से मिलता है। दूसरे शब्दों में उसे अपने माता–पिता के शारीरिक एवं मानसिक गुण प्राप्त होते है। इसी को हम वंशानुक्रम कहते है।

बी.एन. झा के अनुसार ''वंशानुक्रम व्यक्ति की जन्मजात विशेषताओ का पूर्ण योग है।''

एच.ए. पीटरसन के अनुसाार ''व्यक्ति को अपने माता–पिता से पूर्वजों की जो विशेषताएं प्राप्त है उसे वंशक्रम कहते है।''

कभी–कभी यह देखने को मिलता है कि विद्वान माता–पिता के बालक मूर्ख और मूर्ख माता पिता के बालक विद्वान होते है। इसका कारण यह है कि बालक को न केवल अपने माता पिता के वरन उनके पूर्वजों के भी गुण प्राप्त हो सकते है। प्रत्येक प्राणी को अपने पूर्वजों से तीन प्रमुख गुण प्राप्त होत हैः–

1. पूर्वजों और माता पिता की समानता।
2. पूर्वजों और माता पिता की भिन्नता।
3. कुछ असामान्य विभिन्नताएं।

वंशानुक्रम का महत्व :–

1. वंशानुक्रम के कारण ही बालकों में शारीरिक भिन्नता पायी जाती है। बालक के शारीरिक विकास का उसकी शिक्षा पर भी प्रभाव पड़ता है। इसलिए शारीरिक विकास और वैयक्तिक भिन्नता का पूरा ध्यान रखते हुए शिक्षा व्यवस्था करनी चाहिए। इसे ध्यान में रखकर ही विभिन्न कक्षाओं में विषय वस्तु का निर्धारण किया जाता है।
2. वंशानुक्रम के कारण बालकों की जन्मजात क्षमताओं और योग्यताओं में अन्तर होता है जिससे सीखने की योग्यता में भी अन्तर आ जाता है। कुछ बालक किसी चीज को शीघ्र सीख लेते हैं

और कुछ देर से सीख पाते हैं। शिक्षा देते समय बालक की क्षमताओं और सीखने की योग्यताओं का विशेष ध्यान रखना चाहिए। और इन्हीं के अनुसार शिक्षण विधि का चयन करना चाहिए। इस बात को ध्यान में रखते हुए वर्तमान समय में शिक्षा में अभिक्रमित अनुदेशन (Programmed Instruction) की व्यवस्था की गई है। इस पद्धति से बालक अपनी क्षमताओं के अनुसार ज्ञान प्राप्त करता है।

3. बालकों को वंशानुक्रम से कुछ प्रवृत्तियां प्राप्त होती हैं जो वांछनीय तथा अवांछनीय दोनों प्रकार की हो सकती है। वंशानुक्रम के ज्ञान से इन प्रवृत्तियों का अध्ययन करके वांछनीय प्रवृत्तियों का विकास और अवांछनीय प्रवृत्तियों का दमन या मार्गान्तरीकरण किया जा सकता है। इस प्रकार बालक के अभद्र या अवांछनीय व्यवहार को सुधारा जा सकता है।
4. कुछ बालकों में वंशानुक्रम जनित विकार आ जाते हैं। ऐसे बालक कक्षा में अपने को हीन अनुभव करते हैं। ऐसे बालकों को सहानुभूतिपूर्वक शिक्षा देनी चाहिए।
5. वंशानुक्रम में समानता, भिन्नता और प्रत्यागमन के नियमों के पूर्ण ज्ञान से बालकों को भावना ग्रन्थियों से बचाया जा सकता है। उदाहरणार्थ– प्रत्यागमन का नियम बताता है कि प्रतिभाशाली माता पिता की संतान मन्द बुद्धि हो सकती है। इसके ज्ञान से शिक्षक यह नहीं कह सकता कि तुम्हारे पिता को प्रतिभाशाली हैं और तुम निरे बुद्धू हो। इस प्रकार निर्दोष बालक भावना ग्रन्थियों का शिकार होने से बच जाता है।
6. वुडवर्थ के अनुसार, देहाती बालकों की अपेक्षा शहरी बालकों के मानसिक स्तर की श्रेष्ठता कुछ हद तक वंशानुक्रम के कारण होती है। इस बात का ज्ञान होने से शिक्षण को बालकों के मानसिक स्तरों के अनुरूप बनाकर उसे और भी प्रभावी बनाया जा सकता है।

वातावरण का अर्थ :–

वातावरण के लिये पर्यावरण शब्द का भी प्रयोग किया जाता है। पर्यावरण दो शब्दों से मिलकर बना है परि+आवरण। परि का अर्थ है चारों ओर एवं आवरण का अर्थ है ढ़कने वाला। इस प्रकार पर्यावरण या वातावरण वह वस्तु है जो चारों ओर से ढ़के या घेरे हुए है। अतः व्यक्ति के चारों ओर जो कुछ है वह उसका वातावरण है। इसमें वे सब तत्व सम्मिलित किये जा सकते है जो व्यक्ति के जीवन और व्यवहार को प्रभावित करते है।

वुडवर्थ के अनुसार ''वातावरण में वह सब बाह्य तत्व आ जाते है जिन्हांने व्यक्ति को जीवन प्रारंभ करने के समय से प्रभावित किया है।''

रॉस के अनुसार '' वातावरण वह बाहरी शक्ति है जो हमें प्रभावित करती है।''

अतः वातावरण व्यक्ति को प्रभावित करता है। इसमें बाह्य तत्व आते है। वातावरण किसी एक तत्व का नाम नहीं अपितु एक समूह तत्व का नाम है।

इस दृष्टि से वातावरण व्यक्ति को उसके विकास में वांछित सहायता प्रदान करता है।

वातावरण का महत्व :–

1. बालक अपना अधिकांश समय अपने परिवार, पड़ोस, मोहल्ले तथा खेल के मैदान में व्यतीत करता है जिससे उसके विकास पर इनका प्रभाव पड़ता है। इन स्थानों के वातावरण का ज्ञान होने पर बालक को उचित निर्देशन देकर उसके विकास को सही दिशा प्रदान की जा सकती है। इसके साथ ही विकास संबंधी समस्याओं का समाधान भी किया जा सकता है।
2. वातावरण संबंधी ज्ञान बालक की कुसमायोजन संबंधी समस्याओं को सुलझाने में सहायक होता है। यदि कोई बालक दूषित वातावरण से आता है तो उसकी उपेक्षा न करके ऐसा वातावरण तैयार करना चाहिए जिससे उस वातावरण का प्रभाव कम हो सके और बालक के व्यवहार में सुधार हो सकें।
3. वातावरण से संबंधित परीक्षणों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि बालक के व्यवहार पर इसका गहरा प्रभाव पड़ता है। इसका ज्ञान होने के कारण ही विद्यालय में अनुकूल शैक्षिक वातावरण बनाने का प्रयत्न किया जाता है। इस सबके लिए पुस्तकालय, खेल कूद, व्यायाम के साथ ही अन्य पाठ्य सहगामी क्रियाओं का आयोजन किया जाता है। इस प्रकार की क्रियाओं से परिपूर्ण वातावरण का प्रभाव बालक की भावनाओं पर व्यापक रूप से पड़ता है। परिणामतः चरित्र निर्माण में वातावरण काफी सहायक होता है।
4. न्यूमैन तथा फ्रीमैन ने जुड़वां बच्चों पर अध्ययन करके यह सिद्ध कर दिया है कि शैक्षिक उपलब्धियों, व्यक्तित्व और स्वभाव पर वातावरण का अधिक प्रभाव पड़ता है।

   न्यूमैन के अनुसार – ''वातावरण द्वारा शारीरिक लक्षण सबसे कम प्रभावित होते है, बुद्धि उससे अधिक, शिक्षा तथा ज्ञान प्राप्ति उससे भी अधिक तथा व्यक्तित्व एवं स्वभाव सबसे अधिक।''

   इस ज्ञान के फलस्वरूप शिक्षक, कक्षा के वातावरण को अनुकूल बनाने का प्रयत्न कर सकता है।
5. बालक के विकास की दिशा को वातावरण निश्चित करता है। अनुकूल वातावरण मिलने पर बालक सदाचारी और चरित्रवान बनता है तथा प्रतिकूल वातावरण मिलने पर वह दुराचारी और चरित्रहीन हो सकता है। इस बात का ज्ञान होने से अभिभावक विद्यालय से बाहर के वातावरण और शिक्षक विद्यालयीय वातावरण को नियंत्रित कर अनुकूल बनाने का प्रयत्न करते हैं जिससे बालक का सही दिशा में विकास हो सके।
6. शिक्षा, बालक की अन्तर्निहित शक्तियों का विकास करती है। इन अन्तर्निहित शक्तियों का स्वाभविक विकास उपयुक्त वातावरण में ही हो सकता है। बालक की मूलप्रवृत्तियां उसे वंशानुक्रम से प्राप्त होती है, किन्तु उसका विकास उपयुक्त वातावरण में ही होता है।

7. प्रत्येक समाज का एक विशिष्ट वातावरण होता है। बालक को सामाजिक वातावरण से ही अनुकूलन करना पड़ता है। इस बात से पूर्ण परिचित शिक्षक, विद्यालय को लघु समाज का रूप प्रदान कर बालकों को उनके सामाजिक वातावरण से अनुकूलन करने की शिक्षा प्रदान कर सकता है।
8. वातावरण के महत्व से परिचित शिक्षक ऐसा वातावरण तैयार कर सकता है जिससे बालकों में विचारों की उचित अभिव्यक्ति, शिष्ट सामाजिक व्यवहार, कर्तव्यों और अधिकारों का ज्ञान, स्वाभविक प्रवृत्तियों पर नियंत्रण आदि गुणों का अधिक से अधिक विकास हो सके।

इकाई सारांश–

व्यक्तित्व में एक मनुष्य के न केवल शारीरिक और मानसिक गुणों का वरन उसके सामाजिक गुणों का भी समावेश होता है।

व्यक्तित्व के प्रकारः–

1. शरीर रचना प्रकार।
2. समाजशास्त्रीय प्रकार।
3. मनोवैज्ञानिक प्रकार।

संतुलित व्यक्तित्व की विशेषताएंः– आत्म चेतना, सामंजस्य, सामाजिकता, निर्देशित लक्ष्य प्राप्ति, दृढ़ इच्छाशक्ति, शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य, एकता एवं विकास की निरंतरता।

व्यक्तित्व मापन की विधियाँ :– आत्मनिष्ठ, वस्तुनिष्ठ एवं प्रक्षेपण।

वंशानुक्रम एवं वातारण :– माता पिता के स्वभाविक रूप से प्राप्त शारीरिक व मानसिक विशिष्टताओं को वंशानुक्रम कहते है।

वंशानुक्रम के द्वारा निर्धारित शारीरिक तथा मानसिक विशिष्टताओं के अतिरिक्त जो कुछ भी बालक के आस पास है वह सब वातावरण है। वातावरण तीन प्रकार का होता हैः–

1. प्राकृतिक
2. सांस्कृतिक
3. सामाजिक वातावरण।

पाठ्गत प्रश्न

प्रश्न 1. व्यक्तित्व की व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 2. संतुलित व्यक्तित्व की विशेषताएं लिखिए।

प्रश्न 3. व्यक्तित्व को प्रभावित करने वाले कारक लिखिए।

प्रश्न 4. व्यक्तित्व मापन की विभिन्न विधियों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

प्रश्न 5. व्यक्तित्व के विकास में वंशानुक्रम एवं वातावरण के प्रभाव को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 6. व्यक्तित्व के प्रकार लिखिए।

— — — —

पत्राचार पाठ्यक्रम
माध्यमिक शिक्षा मण्डल, मध्यप्रदेश, भोपाल
(द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित)
डिप्लोमा इन एज्युकेशन
विषय – शिक्षा मनोविज्ञान
द्वितीय वर्ष
प्रश्न पत्र – छटवां

इकाई –7 बुद्धि एवं बुद्धि मापन निर्धारित अंक – 08

विषयांश–
7.1 परिचय, परिभाषा एवं सिद्धांत
7.2 बुद्धि– लब्धि एवं उसका मापन।
7.3 बुद्धि परीक्षण के प्रकार
7.4 बुद्धि परीक्षण की उपयोगिता।

प्रिय छात्राध्यापक!

पूर्व पाठ में आपने व्यक्तित्व एवं व्यक्तित्व मापन के विषय में जानकारी प्राप्त की। प्रस्तुत अध्याय में बुद्धि एवं बुद्धिमापन के विषय में आपको जानकारी दी जावेगी।

7.1 बुद्धि का परिचय, परिभाषा एवं सिद्धांत

शिक्षा मनोविज्ञान में बुद्धि के ऊपर सर्वाधिक कार्य किया गया है। 17वीं शताब्दी से ही दर्शन के साथ मनोविज्ञान के अध्ययन पर बुद्धि के स्वरूप संरचना प्रकार व सैद्धांतिक आधार की चर्चा प्रारंभ हो गई थी।

जहाँ तक बुद्धि शब्द की परिभाषा का प्रश्न है तो मनोविज्ञानिकों ने इसे तीन श्रेणियों में विभक्त किया है।

1. समायोजन
2. सीखने की क्षमता
3. अमूर्त चिंतन

अंग्रेजी में बुद्धि को construct के नाम से जाना जाता है। व्यक्तिगत विभिन्नता के आधार पर हर व्यक्ति में बुद्धि का स्तर अनुवांशिकी एवं पर्यावरणीय कारकों के प्रभाव के कारण अलग अलग होता है।

ई.एल. थार्नडाइक ने बुद्धि के तीन प्रकार बताए हैं

1) सामाजिक बुद्धि 2) अमूर्त बुद्धि 3) मूर्त बुद्धि

1) सामाजिक बुद्धि (Social Intelligence)– सामाजिक बुद्धि से तात्पर्य वैसी मानसिक क्षमता जिसके सहारे व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को ठीक ढंग से समझता है व व्यवहार कुशलता दिखा पाता है। ऐसे लोगों का सामाजिक संबंध बहुत ही अच्छा होता है व समाज में उनकी बहुत इज्जत होती है। जैसे अच्छे नेता, शिक्षक इत्यादि।

2) अमूर्त बुद्धि (Abstract Intelligence) – अमूर्त बुद्धि से तात्पर्य वैसी मानसिक क्षमता जिसके सहारे व्यक्ति शाब्दिक तथा गणितीय संकेतों व चिन्हों को आसानी से समझ पाता है व उनकी उचित व्याख्या कर पाता है ऐसे व्यक्ति जिनमें अभूर्त बुद्धि अधिक होती हैं सफल कलाकार, पेंटर व गणितज्ञ होते हैं।

3) मूर्त बुद्धि (Concrete Intelegence)– मूर्त बुद्धि से तात्पर्य ऐसी मानसिक क्षमता जिसके सहारे व्यक्ति ठोस वस्तुओं का महत्व समझता हैं तथा उसका उपयोग ठीक ढंग से विभिन्न परिस्थितियों में करता है ऐसे बुद्धि वाले व्यक्ति सफल व्यापारी बन सकते हैं।

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि को इस प्रकार परिभाषित किया है –

मन के अनुसार ''नवीन परिस्थितियों को झेलने की मस्तिष्क की नमनीयता।''

बंकिन्घम के अनुसार ''सीखने की योग्यता ही बुद्धि है।''

बर्ट के अनुसार ''बुद्धि अच्छी तरह निर्णय करने, समझने एवं तर्क करने की योग्यता है।

वुडवर्थ के अनुसार ''बुद्धि कार्य करने की एक विधि है।''

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि बुद्धि में अतीत के अनुभवों का प्रयोग नवीन परिस्थितियों में समायोजन, परिस्थिति को समझना तथा क्रिया को व्यापक रूप से समझना ही बुद्धि है।

बुद्धि के विषय में एक मत यह विकसित हो रहा है कि बुद्धि नामक कोई भी तथ्य नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी क्षमता होती है। एक व्यक्ति एक क्षेत्र में अपनी योग्यता तथा क्षमता का लाभ उठाता है तो दूसरा व्यक्ति दूसरे क्षेत्र में लाभ उठाता है।

बुद्धि के सिद्धांत :–

बुद्धि के अनेक सिद्धांत प्रतिपादित किये गये है जो उसके स्वरूप पर पर्याप्त प्रकाश डालते है। इसके प्रमुख सिद्धांत है–

1. एक खण्ड का सिद्धांत।
2. दो खण्ड का सिद्धांत।
3. तीन खण्ड का सिद्धांत
4. बहु खण्ड का सिद्धांत।
5. मात्रा सिद्धांत।
6. वर्ग घटक सिद्धांत।
7. क्रमिक महत्व का सिद्धांत

1. **एक खण्ड का सिद्धांत :–** इस सिद्धांत के प्रतिपादक बिनेट और टर्मन है। उन्होंने बुद्धि को एक अखण्ड और अविभाज्य इकाई माना है। उनका मत है कि व्यक्ति की विभिन्न मानसिक योग्यताएं एक इकाई के रूप में कार्य करती है।
2. **दो खण्ड का सिद्धांत :–** इस सिद्धांत का प्रतिपादक स्पीयरमैन है। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में दो प्रकार की बुद्धि होती है– सामान्य तथा विशिष्ट।
3. **तीन खण्ड का सिद्धांत :–** यह सिद्धांत भी स्पीयरमैन के नाम से संबंधित है। उसने इसका नाम सामूहिक खण्ड दिया। उसने बुद्धि का एक खण्ड और बनाया।
4. **बहुखण्ड का सिद्धांत :–** स्पीयरमैन के बुद्धि के सिद्धांत पर आगे कार्य करके गिलफर्ड ने ''बहुखण्ड का सिद्धांत'' प्रतिपादित किया।
5. **मात्रा सिद्धांत :–** इस सिद्धांत का प्रतिपादक थार्नडाइक है। इनका मत है कि मस्तिष्क का गुण स्नायु तन्तुओं की मात्रा पर निर्भर रहता है।
6. **वर्ग घटक सिद्धांत :–** जी. थामसन ने बुद्धि को अनेक विशिष्ट योग्यताओं तथा विशेषताओं का समूह माना है, एक ही वर्ग में अनेक प्रकार की विशेषताएं होती है।
7. **क्रमिक महत्व का सिद्धांत :–** बर्ट तथा टर्मन ने मानसिक योग्यताओं को क्रमानुसार महत्व दिया है। यह क्रम इस प्रकार है–

    1. सामान्य।
    2. स्मरण, चिन्तन, तर्क, कल्पना।
    3. विशेष मानसिक योग्यता।

7.2 बुद्धि लब्धि एवं उसका मापन :–

बुद्धि परीक्षण का आधार मानसिक एवं शारीरिक आयु के मध्य का संबंध है। बुद्धि परीक्षा के परिणाम बुद्धि लब्धि के द्वारा दिखाये जाते है। बुद्धि लब्धि मानसिक आयु के अभाव में मापी नही जा सकती।

मानसिक आयु :– मानसिक आयु बालक या व्यक्ति की सामान्य मानसिक योग्यता बताती है। गेट्स के अनुसार मानसिक आयु हमें किसी व्यक्ति की बुद्धि परीक्षा के समय बुद्धि परीक्षा द्वारा ज्ञात की जाने वाली सामान्य मानसिक योग्यता के बारे में बताती है।

बुद्धिलब्धि का अर्थ :– बुद्धिलब्धि, बालक या व्यक्ति की सामान्य योग्यता के विकास की गति बताती है। कोल के शब्दों में ''बुद्धिलब्धि यह बताती है कि मानसिक योग्यता में किस गति से विकास हो रहा है।''

बुद्धिलब्धि निकालने की विधि :– मानसिक आयु का विचार आरंभ करने का श्रेय बिने (Binnet) को प्राप्त है। बुद्धि लब्धि निकालने का सूत्र –

$$\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{जीवन या वास्तविक आयु}} \times 100$$

उदाहरणार्थ यदि बालक की मानसिक आयु 10 वर्ष और जीवन या वास्तविक आयु 8 वर्ष है, तो उसकी बुद्धि लब्धि 125 होगी जैसे–

$$\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{10}{8} \times 100 = 125$$

परीक्षणों से प्राप्त अंकों को तालिका के अनुसार मानसिक आयु में परिवर्तित किया जाता है।

7.3 बुद्धि परीक्षण के प्रकार :–

बुद्धि परीक्षाओं को सामान्य रूप से दो वर्गों में विभाजित किया जाता है–

1. वैयक्तिक
2. सामूहिक

1. **वैयक्तिक बुद्धि परीक्षा :–** यह परीक्षा एक समय में एक व्यक्ति की ली जाती है।
2. **सामूहिक बुद्धि परीक्षा :–** यह परीक्षा एक समय में अनेक व्यक्तियों की ली जाती है। इसका आरंभ प्रथम विश्वयुद्ध के समय अमरीका में हुआ।

वैयक्तिक और सामूहिक बुद्धि परीक्षाओं के निम्न रूप होते है।

1. शाब्दिक
2. अशाब्दिक
3. क्रियात्मक

शाब्दिक परीक्षण वह है जिन्हें हल करने के लिये शाब्दिक या भाषा का ज्ञान आवश्यक होता है। अर्थात अक्षरों एवं शब्दों के ज्ञान के साथ संख्या ज्ञान भी आवश्यक है।

अशाब्दिक परीक्षण में प्रश्नों के उत्तर, चित्रों, आकारों व अन्य सामाग्रियों के माध्यम द्वारा दिये जाते हैं। जिस देश में कई भाषायें बोली जाती हैं उस देश के लोगों की बुद्धि परीक्षण के लिये अशाब्दिक बुद्धि परीक्षाओं का ही उपयोग किया जाता है।

क्रियात्मक इसका मुख्य उद्देश्य होता है कि व्यक्ति को लिखने पढ़ने का कितना ज्ञान है।

क्रियात्मक परीक्षा में उन व्यक्तियों की परीक्षा ली जाती है जिनको भाषा का कम ज्ञान होता है या जो लिखना पढ़ना नहीं जानते। इस परीक्षा विधि में वास्तविक वस्तुओं का प्रयोग किया जाता है और परीक्षार्थियों से कुछ समस्यापूर्ण कार्य करने के लिये कहा जाता है।

7.4 बुद्धि परीक्षण की उपयोगिता :–

प्रायः सभी विद्वान यह मानते है कि बुद्धि परीक्षाओं से सीखने की क्षमता के विषय में उपयोगी जानकारियाँ मिलती है। अतः एक सफल अध्यापक इन परीक्षाओं का विस्तृत ज्ञान रखना चाहिए। यह परीक्षायें बालको की विभिन्न विषयगत क्षमताओं का ज्ञान कराने में उसकी सहायता करती है। शिक्षा में इनका प्रयोग अनेक व्यवहारिक कार्यों के लिये किया जाता है।

1. **सर्वोत्तम बालक का चुनाव (Selection of Best) –** बुद्धि परीक्षाओं की सहायता से विद्यालय–प्रवेश छात्रवृत्तियों, वाद–विवाद और इसी प्रकार की अन्य प्रतियोगिताओं के लिए सर्वोत्तम बालकों का चुनाव किया जा सकता है।
2. **पिछड़े हुए बालकों का चुनाव (Selection of Backward) –** बुद्धि–परीक्षाओं का प्रयोग करके, पिछड़े हुए और मानसिक एवं शारीरिक दोषों वाले बालकों का सरलता से चुनाव किया जा सकता है। चुनाव किए जाने के बाद उनको शिक्षा प्राप्त करने के लिए विशिष्ट विद्यालयों में भेजा जा सकता है।
3. **अपराधी व समस्यात्मक बालकों का सुधार** (Reform of Delinquents and Problematics) – बुद्धि परीक्षाओं द्वारा यह मालूम करने का प्रयास किया जाता है कि बालक–अपराधी, असन्तुलित और समस्यात्मक क्यों हैं?
4. **बालकों का वर्गीकरण (Classification of Children) –** बुद्धि–परीक्षाओं के आधार पर कक्षा के बालकों को तीव्र बुंद्धि, मन्द और साधारण बुद्धि वाले बालकों में विभक्त करके, उनको अलग–अलग शिक्षा दी जा सकती है।
5. **बालकों की क्षमता के अनुसार कार्य (Work According to Children's Capacity) –** गेट्स एवं अन्य (Gates & Others, P. 269) के अनुसार – बुद्धि–परीक्षाओं द्वारा बालकों की सामान्य

योग्यता और मानसिक आयु को ज्ञात करके यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उनमें कार्य करने की कितनी क्षमता है। अतः उनको उनकी क्षमता के अनुसर कार्य दिया जा सकता है।

6. **बालकों की विशिष्ट योग्यताओं का ज्ञान (Knowledge of Abilities) –** बुद्धि परीक्षाओं की सहायता से बालकों की विशिष्ट योग्यताओं की जानकारी प्राप्त करे, उनको उचित शैक्षिक निर्देशन दिया जा सकता है। अतः वे अधिक प्रगति कर सकते है।
7. **बालकों की व्यावसायिक योग्यता का ज्ञान (Knowedge of Vocations) –** बुद्धि परीक्षाओं का सतर्कता से प्रयोग करके, बालकों की व्यावसायिक योग्यताओं का अनुमान लगाया जा सकता है। अतः उन्हें अपनी योग्यताओं के अनुसार व्यवसायों का चयन करने के लिए परामर्श दिया जा सकता है।
8. **बालकों को भावी सफलताओं का ज्ञान (Knowledge of Result) –** डगलस एवं हालैण्ड का कथन हैं – ''बुद्धि परीक्षाएँ छात्रों की भावी सफलताओं की भविष्यवाणी करती हैं।'' उनके माता पिता उनके भावी सफल कार्यों को ध्यान में रखकर उनके लिए शिक्षा की उपयुक्त व्यवस्था कर सकते हैं। फलस्वरूप, बालक अपने भावी जीवन में सफल हो सकते हैं।
9. **अपव्यय का निवारण (Eradication of Wastage) –** सब बालकों में सब विद्यालय–विषयों के लिए समान योग्यता नहीं होती है। फलस्वरूप, अनेक बालक परीक्षाओं में अनुत्तीर्ण होने के कारण विद्याध्ययन स्थगित कर देते हैं। इस अपव्यय का निवारण करने के लिए बुद्धि परीक्षाओं द्वारा बालकों की योग्यताओं को ज्ञात कर लिया जाता है और इन योग्यताओं के अनुसार उनको पाठ्य–विषयों का चुनाव करने का निर्देशन दिया जाता है।
10. **राष्ट्र के बालकों की बुद्धि का ज्ञान (Knowledge of intelligence) –** बुद्धि परीक्षाओं द्वारा राष्ट्र के किसी वय वर्ग के बालकों की बौद्धिक योग्यता को ज्ञात किया जा सकता है। बुद्धि परीक्षण आज के युग में जॉब के लिये अनिवार्य हो गये हैं। प्रत्येक प्रशिक्षण तथा सेवायोजन के लिये अभ्यर्थियों के चयन के आधार में एक बुद्धि परीक्षण भी है।

विद्यालय में प्रवेश के समय बालक की बुद्धि के मापन की आवश्यकता पड़ती है। बुद्धि परीक्षण के आधार पर छात्रों की पाठ्यविषयों के चुनाव में सहायता कर सकते है। छात्र को विज्ञान, साहित्य, कॉमर्स आदि वर्गों में पढ़ने की सलाह दी जा सकती है। कुशाग्र बुद्धि वाले को कठिन विषय तथा मन्द बुद्धि वालों को सरल विषय लेने का परामर्श दिया जा सकता है।

इकाई सारांश–

वुडवर्थ के अनुसार ''बुद्धि कार्य करने की एक विधि है।'' बुद्धि में अतीत के अनुभवों का प्रयोग, नवीन परिस्थितियों में समायोजन, परिस्थिति को समझना तथा क्रिया को व्यापक रूप से देखना सम्मिलित है। बुद्धि में निम्न प्रकार की योग्यताएं मानी जाती है–

1. सीखने की योग्यता।
2. अमूर्त चिंतन की योग्यता।
3. समस्या का समाधान करने की योग्यता।
4. अनुभव से लाभ उठाने की योग्यता।
5. संबंधों को समझने की योग्यता।
6. अपने वातावरण से समायोजन करने की योग्यता।

बुद्धिलब्धि :– बुद्धि लब्धि, बालक या व्यक्ति की सामान्य योग्यता के विकास की गति बनाती है।
बुद्धि लब्धि निकालने का सूत्र –

$$\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} \times 100$$

बुद्धि परीक्षण के प्रकार :– बुद्धि परीक्षाओं को सामान्य रूप से दो वर्गों में विभाजित किया जाता है–

1. वैयक्तिक बुद्धि परीक्षा।
2. सामूहिक बुद्धि परीक्षा।

बुद्धि परीक्षण की उपयोगिता :– बुद्धि परीक्षाओं से सीखने की क्षमता के विषय में उपयोगी जानकारियां मिलती है।

पाठ्गत प्रश्न :–

प्रश्न 1. बुद्धि को परिभाषित कीजिए?

प्रश्न 2 बुद्धि कितने प्रकार की होती हैं?

प्रश्न 3 बुद्धि के सिद्धांतों की व्याख्या कीजिए?

प्रश्न 4. वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण से क्या अभिप्राय है?

प्रश्न 5. बुद्धि परीक्षण के दो उपयोग लिखिये?

– – – –

पत्राचार पाठ्यक्रम
माध्यमिक शिक्षा मण्डल, मध्यप्रदेश, भोपाल
(द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित)
डिप्लोमा इन एज्युकेशन
विषय – शिक्षा मनोविज्ञान
द्वितीय वर्ष
प्रश्न पत्र – छटवां

इकाई–8 अभिक्षमता एवं अभिक्षमता मापन (Aptitude) निर्धारित अंक – 06

8.1 अर्थ, परिभाषा एवं महत्व।
8.2 मापन (अभिक्षमता परीक्षण द्वारा)
8.3 अभिक्षमता परीक्षणों के व्यवहारिक उपयोग।

प्रिय छात्राध्यापक!

प्रतिदिन के जीवन में व्यक्तियों, अध्यापकों, अभिभावकों, मिल मालिकों तथा अन्य व्यवसाय या कला से संबंधित व्यक्तियों द्वारा यह कथन उनसे संबंधित बालकों छात्रों के लिये कहा जाता है कि वह कला, विद्या, चिकित्सा, अभियांत्रिकी, नृत्य, गायन, वादन, अभिनय या किसी भी क्षेत्र में योग्यता रखता है जो उसके लिये ईश्वरीय वरदान या देन कही जाती है किन्तु मनोवैज्ञानिक के लिये यह अभिक्षमता है।

8.1 अर्थ, परिभाषा एवं महत्व

अभिक्षमता किसी एक क्षेत्र या समूह में व्यक्ति की कार्य कुशलता की विशिष्ट योग्यता अथवा विशिष्ट क्षमता है।

बालक के विकास एवं व्यक्ति की व्यावसायिक सफलता में घर पर माता–पिता अभिक्षमता के महत्व को समझ सके तो बालक के समुचित विकास हेतु उपयुक्त पर्यावरण तैयार किया जा सकता है जिससे घर रूपी खान में छिपे हुए बालक रूपी हीरों की चमक दिखाने से अवसरों की अधिक संभावना रहेगी अतएव अभिक्षमता मापन का मुख्य उद्देश्य बालक की छिपी हुई एवं अप्रत्यक्ष योग्यताओं को पहचान कर उसे उचित पर्यावरण प्रदान करता है जिससे बालक या व्यक्ति को उसकी अभिक्षमताओं एवं रूचि के अनुसार शिक्षा दी जा सके।

परिभाषा :–

अभिक्षमता की परिभाषा के संबंध में मनोवैज्ञानिकों में मतैव्य नहीं है। फिर भी इस संबंध में दो प्रमुख विचारधाराएं प्रचलित है। एक विचारधारा के अनुसार अभिक्षमता जन्मजात अथवा अर्जित है। जबकि दूसरी विचारधारा के दृष्टिकोण से अभिक्षमता एक गुण है अथवा बहुत से गुणों का सम्मिलित प्रभाव है।

बिंघम :–

''अभिक्षमता किसी व्यक्ति के प्रशिक्षण के पश्चात उसके ज्ञान, दक्षता या प्रतिक्रियाओं को सीखने की योग्यता है''

दूसरे शब्दों, अभिक्षमता से हमारा आशय व्यक्ति की उस तत्परता अथवा रूझान से है जो किसी पेशे या कार्य में भावी सफलता पाने हेतु आवश्यक होती है तथा जिसका प्रस्फुटन शिक्षा एवं अभ्यास के द्वारा होता है। अतएव बिंघम का निष्कर्ष है कि अभिक्षमता एक गुण नहीं है बल्की यह तो बहुत से गुणों का सम्मिलित प्रभाव है तथा विभिन्न अभिक्षमताओं में विभिन्न गुणों के मिश्रणों की आवश्यकता होती है।

अभिक्षमता का महत्व :–

बिंघम के अनुसार :–

1. व्यक्ति की अभिक्षमता वर्तमान गुणों का वह समुच्चय है जो उसकी भविष्य की क्षमताओं की ओर इंगित करता है।
2. यह व्यक्ति की जन्मजात योग्यता ही नहीं होती बल्कि किसी कार्य को करने में उसकी प्रवीणता के भाव को भी व्यक्त करती है।
3. यह किसी वस्तु का नाम न होकर अमूर्त संज्ञा है। चूँकि यह व्यक्ति का अंग समझी जाती है इसलिए यह व्यक्ति के गुण या उसकी विशेषता की ओर संकेत करती है।
4. वर्तमान वस्तुस्थिति होने पर भी अभिक्षमता का निर्देश भविष्य की ओर होता है यह क्षमताओं की प्रतीत होती है।
5. अभिक्षमता का रूचि योग्यता एवं संतुष्टि से घनिष्ठ संबंध होता है।

इसके अतिरिक्त 'सुपर' ने अभिक्षमता की विशेषताओं में विशिष्टता, एकात्मक रचना, सीखने की सुविधा एवं स्थिरता को महत्व दिया। अभिक्षमता के जन्मजात एवं अर्जित होने के संबंध में बिंघम का विचार है कि किसी भी अभिक्षमता के विकास में जन्मजात एवं अर्जित गुण के मध्य परस्पर संबंध होता है।

8.2 अभिक्षमता परीक्षण का अर्थः–

अभिक्षमता परीक्षण व्यक्ति की किसी विशेष प्रकार के कार्य को करने वाली बीजभूत योग्यता का मापन करते है।

फ्रीमैन (1965) अभिक्षमता परीक्षण वह परीक्षण है जिसके सहारे किसी खास क्षेत्र में कोई विशिष्ट कार्य करने में व्यक्ति की प्राप्त क्षमता का मापन किया जाता है।

अभिक्षमता परीक्षण (मापन) प्रकार :– दो प्रकार के होते हैं। (I) एक कारक (II) बहु कारक

1. एक कारक अभिक्षमता परीक्षण में एक ही तरह की अभिक्षमता की माप की जाती है।
   जैसे : मिनीसोटा यांत्रिक अभिक्षमता
2. बहुकारक : इसमें कई स्वतंत्र अभिक्षमताओं की परीक्षण मात्रा होती है जो भिन्न–भिन्न अभिक्षमताओं का परीक्षण एक साथ करती है जैसे – फ्लैन गन एप्टीटयूड क्लासीफिकेशन टेस्ट (FACT) जो 21 अभिक्षमताओं का परीक्षण एक साथ करती है।

कुछ यांत्रिक योग्यता को मापने वाले परीक्षण :–

1. **मिनीसोटा यांत्रिक एसेम्बली परीक्षण :–** इसके द्वारा व्यक्ति की योग्यता का मापन विभिन्न यांत्रिक उपकरणों को एक साथ रखने में किया जाता है। इस परीक्षण में तीन–तीन उपकरण, तीन भिन्न–भिन्न बाक्सों में रखे जाते है। प्रथम बाक्स में नौ उपकरण, दूसरे में आठ उपकरण तथा तृतीय बाक्स में सोलह उपकरण रखे जाते है। संपूर्ण परीक्षण में एक घंटे से अधिक समय लगता है। यह परीक्षण बच्चों से लेकर प्रौढ़ावस्था तक के बालकों के लिये उपयोगी है।
2. **मिनीसोटा स्थानगत संबंधी परीक्षण :–** इसमें चार बोर्ड है जिनमें से प्रत्येक में 58 विभिन्न आकृतियों वाले टुकड़े होते है इसमें परीक्षार्थी टुकड़ों को बोर्ड के सही स्थान पर रखता है जिससे उसकी गति एवं परिशुद्धता का मापन किया जाता है। इसका प्रशासन एक एक करके किया जाता है तथा इसके करने में लगभग 40–50 मिनट का समय लगता है। यह प्रौढ़ तथा विद्यार्थी दोनों के लिए उपयुक्त है। इसकी रचना भी 1930 में हुई है।
3. **संशोधित मिनीसोटा पेपर फार्म बोर्ड परीक्षण :–** इस परीक्षण का संशोधन सन 1948 में मितेसोटा विश्वविद्यालय में हुआ। इसमें 64 ज्यामितीय समस्याएं है जिनका फलांकन हाथ एवं मशीन दोनों के द्वारा सम्भव होता है।
4. **यांत्रिक समयबोध परीक्षण :–** 1941 में बिनरे ने इस परीक्षण का निर्माण किया जिसमें यांत्रिक समस्याओं को पिच के रूप में प्रस्तुत किया जाता ह। इस परीक्षण का मुख्य उद्देश्य बालक की शारीरिक तथा यांत्रिक समस्याओं को समझना है।
5. **यांत्रिक अभिक्षमता परीक्षण :–** यह परीक्षण यंत्रों के उपयोग के प्रति अभिक्षमता का मापन करने हेतु निर्मित किया गया है। जिससे यांत्रिक क्षमता योग्यता के क्षेत्र में इसके माध्यम से

सफलता एवं असफलता का पूर्वकथन किया जा सके। ये परीक्षण सामान्यतः दो प्रकार के होते है।

1. **क्रियात्मक परीक्षणः–** इसमें व्यक्ति को उसकी क्रियाओं एवं सफलता के अनुसार अंक प्रदान किये जाते है।
2. **शाब्दिक परीक्षण :–** इसमें व्यक्ति से लिखित रूप में समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करने को कहा जाता है। इसकी रचना 1950 में हुई।

लिपिक अभिक्षमता परीक्षण :–

1. **थर्स्टन प्राथमिक मानसिक योग्यता परीक्षण :–** सन् 1938 में थर्स्टन ने कारक विश्लेषण के आधार पर इस परीक्षण की रचना की जो हाईस्कूल एवं कॉलेज विद्यार्थियों हेतु उपयुक्त है। इसमें सात प्रकार की योग्यता है– 1. स्थानगत योग्यता, 2. प्रतिबोधक योग्यता, 3. संख्यात्मक योग्यता, 4. शाब्दिक योग्यता, 5. शब्द प्रवाह योग्यता, 6. स्मृति योग्यता, तथा 7. वर्क योग्यता के मापन हेतु विभिन्न परीक्षणों का निर्माण किया गया। सन् 1941 में शिकागों संशोधन तैयार किया। इसकी ही एक प्रतिरूप एस.आर.ए. प्राथमिक मानसिक योग्यता परीक्षण है जिसके प्रशासन में 40–50 मिनट लगते है। यह परीक्षण 5 कारकों का मापन करता है।
2. **मिनीसोटा लिपिक अभिक्षमता परीक्षण :–** इस परीक्षण की रचना 1946 में हुई। इस परीक्षण में दो उप परीक्षण– 1. संख्या तुलना, 2. नाम तुलना निहित है।
    1. प्रथम उप परीक्षण ने व्यक्ति के सम्मुख 12 अंक तक के 209 संख्या युग्म प्रस्तुत किये जाते है तथा यदि ये युग्म सही होते है तो विषयी सही का चिन्ह लगा देता है अथवा गलत का चिन्ह अंकित करता है। इसी प्रकार–
    2. द्वितीय परीक्षण में कुछ शब्द या नाम दिये रहते है। यह परीक्षण प्रारंभ में तो केवल प्रौढ़ो के हेतु बनाया गया था किन्तु बाद में यह जूनियर तथा सीनिया हाईस्कूल के विद्यार्थियों पर भी प्रयुक्त होने लगा। इस परीक्षण का विश्वसनीयता गुणांक 85–91 तथा वैधता गुणांक 50–60 ज्ञात किया गया।
3. **कार्पोरेशन तथा विभेद अभिक्षमता परीक्षण :–** इस परीक्षण का प्रकाशन सन 1947 में अमरीका के मनोवैज्ञानिक संघ में बैनेट, सीशोर तथा वेसमैन द्वारा किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य 8 से 12 वर्ष तक के बच्चों की विभिन्न योग्यताओं का मापन कर उन्हें शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करता है। इसका प्रयोग वयस्कों के लिये भी उपयोगी है। इसमें आठ उपपरीक्षण 1. शाब्दिक तर्क, 2. अंकात्मक योग्यता, 3. अमूर्त तर्क, 4. स्थानागत संबंध, 5. यांत्रिक तर्क, 6. लिपिक गति एवं शुद्धता, 7. भाषा प्रयोग स्पेलिंग तथा 8. भाषा प्रयोग वाक्य सम्मिलित है। प्रत्येक परीक्षण का प्रकाशन अलग अलग पुस्तिका में किया गया। जिससे इसकी उपयोगिता बढ़ सके।

इन परीक्षणों में पहला, सांतवा, आठवां परीक्षण शाब्दिक तथा अन्य पांच परीक्षण किसी न किसी रूप में अशाब्दिक परीक्षण है। इस माला के उप परीक्षणों की वैधता स्कूल तथा कॉलेज के परीक्षणों की उपलब्धि अंकों एवं व्यावसायिक सफलता के प्रतिकूल निर्धारित की गई है। इस परीक्षण माला का भाग अ कुछ आवश्यक परिवर्तनों एवं संशोधित सहित भारत में डॉ. जे.एम. ओझा द्वारा प्रकाशित हो चुका है। इसका प्रयोग भारत में विभिन्न विद्यालयों, महाविद्यालयों निर्देशन केन्द्रों तथा शोधकर्ताओं द्वारा किया जाता है।

4. **सामान्य अभिक्षमता परीक्षण बैटरी :–** सन् 1947 मे संयुक्त राज्य अमेरिक की नियुक्ति सेवा में व्यक्तियों को रोजगार दिलाने हेतु इस बैटरी का उपयोग किया। इस परीक्षण माला का माकीकरण 17 से 39 वर्ष की आयु के 3156 व्यक्तियों पर किया गया। इसमें प्राप्त मूल प्राप्तांकों को प्रतिमान प्राप्तांकों में परिवर्तित कर लिया जाता है। इसमें व उप परीक्षण – 1. सामान्य तर्क योग्यता, 2. शाब्दिक अभिक्षमता, 3. संख्यात्मक अभिक्षमता, 4. स्थानगत अभिक्षमता, 5. आकृति प्रत्यक्षीकरण, 6. लिपिक निपुणता, 7. क्रियात्मक सामंजस्य 8. अंगुली निपुणता, 9. हस्तक्षय निपुणता निहित है जो विभिन्न कारकों का मापन करते है।
5. **सामान्य लिपिक परीक्षण :–** इस परीक्षण का प्रकाशन मनोवैज्ञानिक कार्पोरेशन द्वारा सन 1950 में किया गया। इसमें 9 उपपरीक्षण निहित है जो विभिन्न समस्याओं– गणित समस्या, शब्द विन्यास, पढ़ने की योग्यता, शब्दों का अर्थ, भाषा प्रयोग आदि का मापन करते है। संपूर्ण परीक्षण करने के लिए 50 मिनट लगते है। पुनर्परीक्षण विधि द्वारा इस परीक्षण का विश्वसनीयता गुणांक 94 है।
6. **फ्लैनगन अभिक्षमता वर्गीकरण :–** 9 से 12वीं कक्षा तक में पढ़ने वाले बच्चों के व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करने तथा कर्मचारियों के चयन हेतु इस परीक्षण का प्रयोग उपयुक्त है। इसमें 21 व्यवसायों के प्रति अभिक्षमता का मापन किया जाता है। फलांको के आधार पर विभिन्न विशिष्ट व्यक्तियों में व्यक्ति की सफलता का पूर्वकथन किया जाता है इसके प्रशासन में लगभग 7 घंटे का समय लगता है। इसके विभिन्न उपपरीक्षणों के मध्य 50 से 60 तक सहसंबंध ज्ञान किया गया है।

विशिष्ट क्षेत्रों में अभिक्षमता परीक्षण :–

इन परीक्षणों में मुख्यतः वे परीक्षण सम्मिलित है जो शिक्षा एवं व्यवसाय के विशिष्ट क्षेत्रों जैसे संगीत, कला, चिकित्सा, कानून, इंजीनियरिंग, विज्ञान आदि का मापन करते है। इन परीक्षणों के माध्यम से व्यक्ति में निहित विशिष्ट योग्यताओं के संबंध में ज्ञान होता है। विभिन्न क्षेत्रों के मापन वाले अभिक्षमता परीक्षणों को निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा रहा है।

संगीत :–

1. सीशोर संगीत योग्यता परीक्षण।

2. ड्रेक संगीत अभिक्षमता परीक्षण।
3. अलफियर संगीत उपलब्धि परीक्षण।

कला :–

1. ग्रेव डिजाइन निर्णय परीक्षण।
2. मायर कला निर्णय परीक्षण।
3. नोवर कला योग्यता परीक्षण।
4. होर्न कला अभिक्षमता रूचि।

चिकित्सा :–

1. मेडिकल कॉलेज दाखिला परीक्षण।

कानून :–

1. कानून कॉलेज दाखिला परीक्षण।

अध्यापन :–

1. राष्ट्रीय शिक्षक परीक्षाएं।

विज्ञान तथा तकनीकी :–

1. स्टैंडर्ड विज्ञान अभिक्षमता परीक्षण।
2. इंजीनियरिंग अभिक्षमता परीक्षण।
3. मिनेसोटा इंजीनियरिंग अभिक्षमता परीक्षण।

अभिक्षमता परीक्षणों के व्यवहारिक उपयोग :–

अभिक्षमता परीक्षणों के विभिन्न क्षेत्रों में व्यवहारिक उपयोग होते है, जैसे मेडिकल कॉलेज, इंजीनियर कॉलेज, कानून, अध्यापन, संगीत, कला, विज्ञान तकनीकी क्षेत्रों में मापन में स्कूल कॉलेज क बच्चों को व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करने, कर्मचारियों, लिपिकों के चयन के लिये इनका उपयोग किया जाता है।

इकाई का सारांश :–

अभिक्षमता से आशय व्यक्ति की उस तत्परता अथवा रूझान से है जो किसी पेशे या कार्य में भावी सफलता पाने हेतु आवश्यक होती है।

अभिक्षमता मापन का मुख्य उद्देश्य बालक की छिपी हुई एवं अप्रत्यक्ष योग्यताओं को पहचान कर उसे उचित पर्यावरण प्रदान करना है। बिंघम ने अभिक्षमता के महत्व को निम्नानुसार वर्णित किया हैं –

1. व्यक्ति की अभिक्षमता वर्तमान गुणों का वह समुच्य है जो उसकी भविष्य की क्षमताओं की ओर इंगित करता है।
2. यह व्यक्ति की जन्मजात योग्यता ही नहीं होती बल्कि किसी कार्य को करने में उसकी प्रवीणता के भाव को भी व्यक्त करती है।
3. यह किसी वस्तु का नाम न होकर अमूर्त संज्ञा है। चूँकि यह व्यक्ति का अंग समझी जाती है इसलिए यह व्यक्ति के गुण या उसकी विशेषता की ओर संकेत करती है।
4. वर्तमान वस्तुस्थिति होने पर भी अभिक्षमता का निर्देश भविष्य की ओर होता है यह क्षमताओं की प्रतीत होती है।
5. अभिक्षमता का रूचि योग्यता एवं संतुष्टि से घनिष्ठ संबंध होता है।

परीक्षण दो प्रकार का होता है 1. एक कारक 2. बहुकारक

पाठगत प्रश्न

प्रश्न 1. विशिष्ट क्षेत्रों के अभिक्षमता परीक्षण लिखिए?

प्रश्न 2. अभिक्षमता की परिभाषा लिखिए?

प्रश्न 3. अभिक्षमता परीक्षण के प्रकार लिखिए।

प्रश्न 4. अभिक्षमता का महत्व क्या है?

प्रश्न 5. अभिक्षमता परीक्षणों के व्यावहारिक उपयोग क्या है?

– – – –

पत्राचार पाठ्यक्रम
माध्यमिक शिक्षा मण्डल, मध्यप्रदेश, भोपाल
(द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित)
डिप्लोमा इन एज्युकेशन
विषय – शिक्षा मनोविज्ञान
द्वितीय वर्ष
प्रश्न पत्र – छठवां

इकाई – 9 सृजनात्मकता आवंटित अंक – 6

विषयांश –

9.1 सृजनात्मकता का अर्थ व परिभाषा।
9.2 सृजनात्मक बालक की पहचान।
9.3 शिक्षा की सृजनात्मकता की उपयोगिता।
9.4 सृजनात्मकता के परीक्षण।

प्रिय छात्राध्यापक

प्रस्तुत इकाई में हम सृजनात्मकता का अर्थ व परिभाषा, बालक की पहचान, शिक्षा में सृजनात्मकता की उपयोगिता, सृजनात्मकता मापने के परीक्षणों का अध्ययन करेंगे।

9.1 अर्थ एवं परिभाषा :–

सृजनात्मक शब्द अंग्रेजी के Creativity (क्रियेटिविटी) से बना है। इस शब्द के समानान्तर विधायकता, उत्पादन, रचनात्मकता डिस्कवरी आदि का प्रयोग होता है। फादर कामिल बुल्के ने क्रियेटिव शब्द के समानान्तर, सृजनात्मक, रचनात्मक सृजनशीलता शब्द बताये। डॉ. रघुवीर ने इसका अर्थ सृजन, उत्पन्न करना, सृजित करना बताया है।

सृजन वह अवधारणा है जिसमें उपलब्ध साधनों से नवीन या अनजानी वस्तु विचार या धारणा को जन्म दिया जाता है। सृजनात्मक से अभिप्राय है रचना संबंधी की योग्यता, नवीन उत्पाद की रचना। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से सृजनात्मक मौलिकता वास्तव में किसी भी प्रकार की क्रिया में घटित होती है।''

सृजनात्मकता ज्ञान, सूचना तथा कौशल के क्षेत्र में पाई जाती है। नवीन तथ्यों सिद्धांतों का प्रतिपादन, सूचना ग्रहण करने तथा कराने की नवीन प्रणालियों तथा नवीन वस्तु विचार की प्रस्तुति सृजनात्मकता के अन्तर्गत आती है।

सृजनात्मकता की परिभाषाएं निम्नलिखित हैः–

1. **क्रो व क्रो –** सृजनात्मकता मौलिक परिणामों को व्यक्त करने की मानसिक प्रक्रिया है।
2. **जेम्स ड्रेवर –** सृजनात्मकता मुख्यतः नवीन रचना या उत्पादन में होती है।
3. **स्टेन –** जब किसी कार्य का परिणाम नवीन हो जो किसी समय में समूह द्वारा उपयोगी मान्य हो, वह कार्य सृजनात्मकता कहलाता है।

इन परिभाषाओं के आधार पर सृजनात्मकता की विशेषताएं इस प्रकार व्यक्त की जा सकती है।

1. सृजनात्मकता मौलिक या नवीन हो।
2. सृजनात्मकता कार्य उपयोगी हो।
3. सृजनात्मकता कार्य को समान रूप से मान्यता मिलनी चाहिए।
4. सृजनात्मकता कार्य में दो या अधिक वस्तुओं, तथ्यों आदि के संयोग से नवीनता का सृजन होना चाहिए।
5. सृजनात्मक कार्य द्वारा व्यक्ति की प्रतिभा का विकास होना आवश्यक है।

प्रो. सुरेश भटनागर के अनुसार– ''यद्यपि सृजनात्मकता कलाकारों के जीवन में अधिक व्यापक रूप से पायी जाती है। लेख, चित्रकार, कवि, विद्वान, अभिनेता आदि में सृजनशीलता विद्यमान रहती है। यदि वातावरण इस युग के विकास के अनुकूल हो तो व्यक्ति की क्षमता का मौलिक विकास होता है। भारत में छात्रों में निहित सृजनशीलता का विकास न होने से हजारो–लाखों प्रतिभाएं अविकसित रह जाती है। इससे राष्ट्र को हानि होती है।

9.2 सृजनात्मक बालक की पहचान :–

गिलफोर्ड ने सृजनात्मकता के तत्व इस प्रकार बताये हैः–

1. तत्कालिक स्थिति से परे जाने की योग्यता।
2. समस्या की पुर्नव्याख्या।
3. सामंजस्य।
4. मापन योग्य व्यवहार
5. मौलिकता एवं नवीनता
6. साहस
7. सामाजिक स्वीकृति
8. प्रवीणता

सृजनात्मकता की पहचान करना शिक्षक के लिये अत्यंत आवश्यक है। सृजनात्मकता बालकों की पहचान इस प्रकार की जा सकती है।

1. मौलिकता।
2. स्वतंत्रत निर्णय क्षमता।

3. परिहास प्रियता।
4. उत्सुकता।
5. संवेदनशीलता।
6. स्वतंत्रता।

उपरोक्त गुणों से बालक में सृजनात्मकता उत्पन्न होती है।

9.3 शिक्षा में सृजनात्मकता की उपयोगिता :–

बालकों में सृजनात्मकता का विकास करना, व्यक्ति तथा समाज, दोनों के हित में है। सृजनात्मकता बालकों में निहित विशिष्ट गुण है। इस गुण का विकास किया जाना आवश्यक शिक्षक को इस बात से परिचित होना चाहिए कि सृजनशील बालक स्वतंत्र निर्णय, शक्ति वाले होते है, अपनी बात पर दृढ़ होते है, वे जटिल समस्याओं के समाधान में रूचि लेते है, वे उच्च स्तर की प्रतिक्रिया करते है।

सृजनात्मकता एक ऐसा विचार है, जिसके माध्यम से बालकों में निहित संभावनाओं को विकसित किया जाता है। क्रो एण्ड क्रो के अनुसार जैसे–जैसे बालक में प्रतिबोधता एवं संबोधता का विकास हो जाता है। वह अपने वातावरण में परिवर्तन करना चाहता है जबकि प्रौढ़ व्यक्ति परिस्थितिनुगत यथार्थ होता है। छोटा बालक अत्यधिक कल्पनाशील होता है। वह अपने खिलौनो को अलग ले जाता है और उनको दूसरे रूप में रखता है। यहां सृजनात्मकता का प्रदर्शन होता है।

सृजनात्मकता एक स्वाभाविक सार्वभौमिक मानवीय शक्ति है। इस शक्ति का प्रयोग शिक्षा के माध्यम से यदि बालकों को प्रोत्साहित करने में किया जावे तो वह साहसिक चिंतन और क्रियाशीलता द्वारा मुख्य धारा से हटकर नये अनुभव प्राप्त करेगा तथा वर्तमान का संबंध भविष्य से जोड़ने की योग्यता विकसित करेगा।

शिक्षा में उपयोगिता :–

1. **सृजनात्मक शिक्षा** :– कोई भी मुक्त अभिव्यक्ति हो बालक भाषा दृश्यकला, संगीत, वैज्ञानिक कार्य अथवा गव्यात्मकता के कारण व्यक्त करता है। तथा अपनी भावनाओं को व्यक्त करता है। इससे उसमें स्पष्टता आती है तथा अभिव्यक्ति हेतु इसमें संवेगात्मक गहनता आती है, जो उसके शैक्षिक विकास में सहायक होती है।
2. **सृजनात्मक मूल्यों का विकास** :– पाठ्यक्रम में दी गई नई–नई विधाओं को समझने में सृजनात्मक मूल्य उसकी मदद करतेहै। जिसके आधार पर पाठ्यक्रम की सामग्री एवं निदेशात्मक विधियों का चिंतन होता है जिससे छात्रों की आत्माभिव्यक्ति विकसित करने में मदद मिलती है।
3. **सृजनात्मक विचार** :– सृजनात्मक से सृजनात्मक विचार विकसित होते है जिनकी अभिव्यक्ति मौलिक तथा तार्किक मौखिक व लिखित रूप से व्यक्त होती है।

सृजनात्मकता से सभी क्षेत्रों में नये–नये प्रयोग एवं संकलन व्यवस्थापन, वर्गीकरण एवं सामंजस्य करने की योग्यता देखने में मिलती है, जो नये–नये अनुसंधान करने की दिशा देती है।

शिक्षा वह व्यापक क्षेत्र है, जहां छात्रों में सृजनात्मक शक्तियों तथा क्षमताओं का विकास व्यक्ति तथा समाज दोनों के हित में करने के लिये ज्ञान के विकास तथा परिस्थितियों की अनुकूलता द्वारा सृजनात्मकता को बल मिलता है।

9.4 सृजनात्मकता के परीक्षण :–

सृजनात्मकता की पहचान के लिये गिलफोर्ड ने अनेक परीक्षणों का निर्माण किया है। ये परीक्षण– निरंतरता, लोचनीयता, मौलिकता तथा विस्तार का मापन करते है। प्रमुख परीक्षण इस प्रकार हैः–

1. **चित्रपूर्ति परीक्षण :–** चित्रपूर्ति परीक्षण में अपूर्ण चित्रों को पूरा करना पड़ता है।
2. **वृत्त परीक्षण :–** इस परीक्षण में वृत्त में चित्र बनाये जाते है।
3. **प्रोडक्ट इम्प्रूवमेंट टास्क :–** चूने के खिलौनो द्वारा नूतन विचारों को लेखबद्ध करके सृजनात्मकता पर बल दिया जाता है।
4. **टीन के डिब्बे :–** खाली डिब्बों से नवीन वस्तुओं का सृजन कराया जाता है।

इकाई सारांश–

सृजन वह अवधारणा है जिसमें उपलब्ध साधनों से नवीन या अनजानी वस्तु, विचार या धारणा को जन्म दिया जाता है। सृजनात्मकता से अभिप्राय है रचना सम्बन्धी योग्यता, नवीन उत्पाद की रचना।

क्रो एंड क्रो के अनुसार 'सृजनात्मकता मौलिक परिणामों को व्यक्त करने की मानसिक प्रक्रिया है।

गिलफोर्ड ने सृजनात्मक के तत्व इस प्रकार बताये हैं –

1. सामंजस्य
2. साहस
3. अन्यों के विचारों में परिवर्तन
4. तात्कालिक स्थिति से परे जाने की योग्यता
5. समस्या की व्याख्या अपने ढंग से करने की क्षमता
6. प्रवीणता

बालकों में सृजनात्मकता का विकास करना, व्यक्ति तथा समाज, दोनों के हित में हैं। शिक्षक को चाहिये कि बालकों में सृजनात्मकता का विकास करने के लिये उपाय करें।

पाठगत प्रश्न

प्रश्न 1. सृजनात्मकता को परिभाषित कीजिए ?

प्रश्न 2. सृजनात्मक बालक की क्या पहचान है?

प्रश्न 3. शिक्षा में सृजनात्मकता की क्या उपयोगिता है?

प्रश्न 4. सृजनात्मकता परीक्षण के नाम लिखए (कोई–2)।

– – – –

पत्राचार पाठ्यक्रम
माध्यमिक शिक्षा मण्डल, मध्यप्रदेश, भोपाल
(द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित)
डिप्लोमा इन एज्युकेशन
विषय – शिक्षा मनोविज्ञान
द्वितीय वर्ष
प्रश्न पत्र – छठवां

इकाई – 10 विशिष्ट बालकों का मनोविज्ञान एवं उनकी शिक्षा निर्धारित अंक – 10

विषयांश

अ) विशिष्ट बालकों का मनोविज्ञान एवं उनकी शिक्षा

10.1 प्रतिभाशाली बालक
10.2 पिछड़े बालक
10.3 निःशक्त बालक
10.4 समस्यात्मक बालक
10.5 बाल अपराध – कारण एवं प्रकार

ब) निर्देशन एवं परामर्श

10.6 अर्थ, परिभाषा, प्रकार एवं महत्व
10.7 विशिष्ट बालकों हेतु निर्देशन एवं परामर्श की आवश्यकता एवं महत्व
10.8 शैक्षिक निर्देशन की उपयोगिता

प्रिय छात्राध्यापक!

पूर्व पाठ में आपने सृजनात्मकता के बारे में पढ़ा, आशा है आप सभी तक विभिन्न मनोवैज्ञानिक पहलुओं की समझ आपकी बन चुकी होगी। इस अध्ययन में विभिन्न प्रकार के बालकों एवं उनकी शिक्षा के स्वरूप के बारे में जानकारी प्राप्त होने के साथ ही विषयांश में निर्देशन एवं परामर्श के बारे में जानकारी प्रदान की जा रही है।

(अ) विशिष्ट बालकों का मनोविज्ञान एवं उनकी शिक्षा–

10.1 प्रतिभाशाली बालक का अर्थ :–

वे बालक जो प्रत्येक क्षेत्र मे औसत बालक से अधिक तीव्र, बुद्धिमान, शारीरिक स्फूर्ति वाले एवं जीवन में अधिक सफलता पाने वाले होते हैं, प्रतिभाशाली बालक के नाम से पुकारे जाते हैं।

प्रेम पसरीचा के अनुसार– प्रतिभावान बालक वह है जो सामान्य बुद्धि की दृष्टि से श्रेष्ठ प्रतीत हो एवं उच्च कोटी की विशेषताएं रखता है।

प्रतिभाशाली बालक की विशेषताएं :–

स्किनर एवं हैरीमैन के अनुसार– प्रतिभाशाली बालक में निम्नलिखित विशेषताएं पाई जाती है–

1. विशाल शब्दकोष।
2. मानसिक प्रक्रिया की तीव्रता।
3. दैनिक कार्यों में विभिन्नता।
4. सामान्य ज्ञान की श्रेष्ठता।
5. सामान्य अध्ययन में रूचि।
6. अध्ययन में अद्वितीय सफलता।
7. अमूर्त विषयों में रूचि।
8. आश्चर्यजनक अर्न्तदृष्टि।
9. मन्द बुद्धि और सामान्य बालकों से अरूचि।
10. पाठ्य विषयों में अत्यधिक रूचि या अरूचि।
11. विद्यालय के कार्यो के प्रति बहुधा उदासीनता।
12. बुद्धि परीक्षाओं में उच्च बुद्धि लब्धि (130 + से 170 + तक)

बिटी के अनुसार– प्रतिभाशाली बालक खेल पसंद करते है। 50 प्रतिशत मित्र बनाने की इच्छा रखते हैं, 80 प्रतिशत धैर्यवान होते हैं, दूसरों का सम्मान करते हैं, 96 प्रतिशत अनुशासन प्रिय होते हैं।

प्रतिभाशाली बालक की शिक्षा :–

प्रतिभाशाली बालक को किस प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिए? इसका उत्तर देते हुए हैविगहर्स्ट ने अपनी पुस्तक में लिखा है– ''प्रतिभाशाली बालकों के लिए शिक्षा का सफल कार्यक्रम वही हो सकता है, जिसका उद्देश्य उनकी विभिन्न योग्यताओं का विकास करता हो।'' इस कथन के अनुसार प्रतिभाशाली बालकों की शिक्षा का कार्यक्रम इस प्रकार होना चाहिए।

1. सामान्य रूप से कक्षोन्नति।
2. विशेष व विस्तृत पाठ्यक्रम।
3. शिक्षक का व्यक्तिगत ध्यान।
4. संस्कृति की शिक्षा।
5. सामान्य बालकों के साथ शिक्षा।

6. विशेष अध्ययन की सुविधाएं
7. पाठ्यक्रम सहभागी क्रियाओं का आयोजन।
8. सामाजिक अनुभवों के अवसर।
9. नेतृत्व का प्रशिक्षण।
10. व्यक्तित्व का पूर्ण विकास।

10.2 पिछड़े बालक :–

जो बालक कक्षा का औसत कार्य नहीं कर पाता है और कक्षा के औसत छात्रों से पीछे रहता है उसे पिछड़ा बालक कहते हैं।

पिछड़े बालक का मन्दबुद्धि होना आवश्यक नहीं है। पिछड़ेपन के अनेक कारण है जिनमें बन्दबुद्धि होना एक है। यदि प्रतिभाशाली बालक की शैक्षिक योग्यता अपनी आयु के छात्रों से कम है तो उस भी पिृछड़ा बालक कहा जाता है। पिछडे बालक में कुद विद्वावनों कि विचार निम्नलिखित हैं–

1) **हिज मैजेस्ट्री** – कार्यालय के प्रकाशन पिछडें बालकों की शिक्षा में कहा गया है–''पिछडे बालक वे हैं,जो उस गति से आगे बढ़ने में असमर्थ होते है जिस गति से उनकी आयु अधिकांश साथी आगे बढ़ रहे हैं।''

2) **सिरिल बर्ट** – ''पिछड़ा बालक वह है जो अपने विद्यालय जीवन के मध्य में अर्थात लगभग$10^{1/2}$ वर्ष की आयु में अपनी कक्षा से नीचे की कक्षा के उस कार्य को न रक सके जो उसकी आयु के बालकों के लिए सामान्य कार्य है।''

पिछड़े बालक की विशेषताएं :–

कुप्पूस्वामी के अनुसार– ''पिछड़े बालक में निम्नलिखित विशेषताएं पाई जाती है :–

1. सीखने की धीमी गति।
2. जीवन में निराशा का अनुभव।
3. समाज विरोधी कार्यो की प्रवृत्ति।
4. व्यवहार संबंधी समस्याओं की अभिव्यक्ति।
5. जन्मजात योग्यताओं की तुलना में कम शैक्षिक उपलब्धि।
6. सामान्य विद्यालय के पाठ्यक्रम से लाभ उठाने में असमर्थता।
7. सामान्य शिक्षण विधियों द्वारा शिक्षा ग्रहण करने में विफलता।
8. मन्दबुद्धि सामान्य बुद्धि या अति श्रेष्ठ बुद्धि का प्रमाण।
9. मानसिक रूप से अस्वस्थ्य और असमायोजिकत व्यवहार।
10. बुद्धि परीक्षाओं में निम्न बुद्धि लब्धि (90 से 110 तक)।

11. विद्यालय कार्य में सामान्य बालकों के समान प्रगति करने की अयोग्यता।

12. अपनी और उसस नीचे की कक्षा का कार्य करने में असमर्थता।?

पिछड़ेपन या शैक्षिक मन्दता के कारण :–

कुप्पूस्वामी के शब्दा में– ''शैक्षिक पिछड़ापन अनेक कारणों का परिणाम है। अधिगम मे मन्दता उत्पन्न करन के लिए अनेक कारक एक साथ मिल जाते हैं।'' प्रमुख कारण निम्नांकित हैं –

1) सामान्य से कम शारीरिक विकास।

2) शारीरिक दोष।

3) शारीरिक रोग।

4) निम्न सामान्य बुद्धि।

5) परिवार की निर्धनता।

6) परिवार का बड़ा आकार।

7) परिवार के झगड़े।

8) माता–पिता की अशिक्षा।

9) माता–पिता की बुरी आदतें।

10) माता–पिता का दृष्टिकोण।

11) विद्यालय में अनुपस्थिति।

12) विद्यालयों का दोषपूर्ण संगठन व वातावरण।

13) वंशानुक्रम

14) विषयों की अनिवार्यता एवं कठिन पाठ्यक्रम

15) समुचित निर्देशन एवं परामर्श का अभाव

पिछड़े बालक की शिक्षा :–

स्टोन्स के अनुसार– ''आजकल पिछड़ेपन के क्षेत्र में किया जाने वाला अधिकांश अनुसंधान यह सिद्ध करता है कि उचित ध्यान दिये जाने पर पिछड़े बालक, शिक्षा में प्रगति कर सकते है।''

पिछड़े बालकों की शिक्षा के प्रति उचित ध्यान देने का अभिप्राय है उनकी शिक्षा का उपयुक्त संगठन, हम इस संगठन के आधारभूत तत्वों को प्रस्तुत कर रहे हैं –

1. विशिष्ट विद्यालयों की स्थापना।
2. विशिष्ट कक्षाओं की स्थापना।
3. विशिष्ट विद्यालयों का संगठन।
4. अच्छे शिक्षकों की नियुक्ति।
5. छोटे समूहों में शिक्षा।
6. विशेष पाठ्यक्रम का निर्माण।
7. अध्ययन के विषय।
8. हस्तशिल्पों की शिक्षा।
9. सांस्कृतिक विषयों की शिक्षा।
10. विशेष शिक्षण विधियों का प्रयोग।
    1) सरल और रोचक शिक्षण विधियां।
    2) शिक्षण की धीमी गति।
    3) शिक्षण का बालकों के दैनिक जीवन और मूर्त वस्तुओं से संबंध।
    4) शिक्षण से विभिन्न उपकरणों का उदार प्रयोग।
    5) कम से कम भौतिक शिक्षण।
    6) पढ़ाये गए विषय की बार–बार पुनरावृत्ति।
    7) अर्जित ज्ञान को प्रयोग के अवसर।
    8) योजना पद्धति के आधार पर कार्य।
    9) भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक आदि स्थानों का भ्रमण।
    10) स्टोन्स के अनुसार– ''इस बात की सावधानी रखनी चाहिए कि एक बार में अधिक न पढ़ा दिया जाय।''

10.3 निःशक्त या विकलांग बालक :–

विशिष्ट बालकों की श्रेणी में एक मुख्य वर्ग अपंग बालकां या असमर्थ बालकों या विकलांग बालकों का भी है। अपंग बालकों से हमारा अभिप्राय उन बालकों से होता है जो साधारण या सामान्य बालकों से मानसिक, शारीरिक या संवेगात्मक दृष्टि से दोषपूर्ण होते हैं। अर्थात वह बालक जिसमें सामान्य बालकों की तुलना में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक कमी अथवा दोष हो, जिसके कारण उसकी उपलब्धियां अधूरी रह जाती है, विकलांग या अपंग या निशक्त बालक कहलाता है।

क्रो एवं क्रो के अनुसार– ऐसे बालक जिनमें ऐसा शारीरिक दोष होता है जो किसी भी रूप में उसे साधारण क्रियाओं में भाग लेन से रोकता है या उसे सीमित रखता है ऐसे बालक को हम विकलांग बालक कह सकते है।''

डी.जी. फोर्स क विचार है कि– ''जब शारीरिक दोषों के कारण उत्पन्न कठिनाईयों से बालक को सामाजजिक स्वीकृति प्राप्त नहीं होती है तब उससे उत्पन्न मनोवैज्ञानिक दोषों में वृद्धि होती है।

निशक्त या विकलांग बालकों को निम्नलिखित वर्गो में बाटा जा सकता है :–

1. **शारीरिक रूप से विकलांग बालक** :– शारीरिक रूप से विकलांग बालक वे होते है जिसमें कोई शारीरिक त्रुटि होती है। वह त्रुटि उनके काम काज में किसी न किसी प्रकार बाधा डालती है। यह त्रुटि अधिक भी हो सकती है और कम भी। शारीरिक रूप से विकलांग बालक भी कई प्रकार के होते हैं।
    - अपंग बालक।
    - संपूर्ण और अर्द्धअंग।
    - पूर्ण बहरे और अपूर्ण बहरे।
    - हकलाने वाले या दोषपूर्ण वाणि वाले।
    - निर्बल बालक।
2. **मानसिक रूप से विकलांग बालक** :– इस प्रकार के बालकों में मूर्ख निम्नबुद्धि वाले या मन्द गति से सीखने वाले बालकों की गणना होती है। इन बालकों का वर्गीकरण बालकों की बुद्धि लब्धि के आधार पर किया जाता है।
3. **संवेगात्मक और सामाजिक रूप से विकलांग बालक** :– इन श्रेणी में बाल अपराधी या कदाचारी बालकों की गिनती होती है अर्थात वे बालक जो संवेगात्मक और सामाजिक रूप से कुसमायोजित हो।

निःशक्त (विकलॉग) बालकों की शिक्षा :–

शिक्षा का विकास बालक की मानसिक परिपकवता पर निर्भर करता है। विभिन्न अध्ययनों में पाया गया है कि विकलांग बालक या तो सामान्य बुद्धि वाले होंगे अथवा असामान्य क्षमताओं वाले। यह भी पाया गया है कि जिन निशक्त बालकों ने अपनी हीनता की भावना पर विजय प्राप्त कर ली है वे संसार में बहुत ही प्रसिद्ध हुए है। अतः हर देश की शिक्षा की व्यवस्था ऐसी हो ताकि बालक अपनी समायोजन की शक्ति को स्थापित करके हीनता की भावना पर विजय प्राप्त कर सके। यहां पर हमें इनकी शिक्षा के लिए निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए–

1. विशिष्ट विद्यालयों की स्थापना।
2. डॉक्टरों तथा विशेषज्ञो का उपयोग।
3. सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार।
4. सहायक सामग्री का निशुल्क प्रयोग।

5. व्यावसायिक पाठ्यक्रम।
6. पौष्टिक आहार।

निःशक्त बालकों की शैक्षिक समस्याएं तथा समाधान :–

निशक्त बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने में निम्न समस्याएं आती हैंः–

1) अर्थ का प्रभाव।
2) पर्याप्त विद्यालायों का अभाव।
3) प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव।
4) उपकरणों का अभाव।
5) सरकार की उदासीनता।

10.4 समास्यात्मक बालक :–

समस्यात्मक बालक उस बालक को कहते है जिसके व्यवहार में कोई असामान्य बात होती है, जिसके कारण वह समस्या बन जाती है। जैसे– चोरी करना, झूठ बोलना आदि।

समस्यात्मक बालक का अर्थ स्पष्ट करते हुए वेलेटाइन ने लिखा है– ''समस्यात्क बालकों–शब्द का प्रयोग साधारणतः उन बालकों का वर्णन करने के लिये किया जाता है जिनका व्यवहार या व्यक्तित्व किसी बात में गंभीर रूप से असामान्य होता है।''

समस्यात्मक बालकों की सूचि बहुत लंबी है। इनमें से कुछ मुख्य प्रकार के बालक हैं– चोरी करने वाले, झूठ बोलने वाले, क्रोध करने वाले, एकान्त पसंद करने वाले, मित्र बनानान पसंद करने वाले आक्रमणकारी व्यवहार करने वाले, विद्यालय से भाग जाने वाले, भयभीत रहने वाले, छोटे बालकों को तंग करने वाले, गृह कार्य न करने वाले, कक्षा में देर से आने वाले आदि। हम इनमें से प्रथम तीन का वर्णन कर रहे है।

1. चोरी करने वाला बालक –

चेरी के कारण–इसके अनेक कारण हैं –

1. अज्ञानता।
2. अन्य विधि से अपरिचित।
3. माता–पिता की अवहेलना।
4. साहस दिखाने की भावना।
5. उच्च स्थिति की इच्छा।
6. आत्म नियंत्रण का अभाव।
7. चोरी की लत।
8. आवश्यकताओं की आपूर्ति

2. झूठ बोलने वाला बालक –

झूठ बोलने के कारण– इसके अनेक कारण हैं –

13. मनोविनोद।
14. दुविधा।
15. मिथ्याभिमान।
16. प्रतिशोध।
17. स्वार्थ।
18. वफादारी।
19. भय।

3. क्रोध करने वाला बालक – साधारणतः क्रोध और आक्रमणकारी व्यवहार साथ होता है। क्रो एण्ड क्रो का कथन है– ''क्रोध आक्रमणकारी व्यवहार द्वारा व्यक्त किया जाता है।'' क्रुद्ध के आक्रमणकारी व्यवहार के कुछ मुख्य स्वरूप है– मारना, काटना, नोचना, चिल्लाना, खरोचना, तोड़ फोड़ करना, वस्तुओं को इधर–उधर फेकना, गाली देना व्यंग करना स्वयं अपने शरीर को किसी प्रकार की क्षति पहुंचाना इत्यादि।

क्रोध आने के कारण :– बालक को क्रोध आने के अनेक कारण हो सकते हैं।

1. बालक के किसी उद्देश्य की प्राप्ति में बाधा पड़ना।
2. बालक में किसी के प्रति ईष्या होना।
3. बालक के खेल कार्य या इच्छा में विघ्न पड़ना।
4. बालक को किसी विशेष स्थान को जाने से रोकना।
5. बालक की किसी वस्तु का छिन लिया जाना।
6. बालक का किसी बात में निराश होना।
7. बालक का अस्वस्थ या रोगग्रस्त होना।
8. बालक का किसी कार्य को करने में असमर्थ होना।
9. बालक के कार्य व्यवहार आदि में निरंतर दोष निकाला जाना।
10. बालक पर अपने माता या पिता के क्रोधी स्वभाव का प्रभाव पड़ना।

10.5 बाल अपराध :–

सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए कुछ कानून होते हैं। इन कानूनों का पालन करना सबके लिए अनिवार्य होता है, चाहे वह वयस्क हो या बालक। यदि वयस्क उन कानूनों की अवहेलना करके समाज विरोधी कार्य करता है तो उसका कार्य अपराध कहा जाता है। यदि बालक या किशोर इस प्रकार का कार्य करता है तो उसका कार्य बाल अपराध या किशोर अपराध कहा जाता है।

जब बालक तथा किशोर समाज द्वारा निर्धारित नियमों तथा मानदण्डों का उल्लंघन इस सीमा तक करते है कि दूसरों के अधिकारों का उत्पीड़न होने लगता है, कष्ट पहुंचाता है तथा दूसरे लोग उसके व्यवहार को असहनीय मानने लगते हैं तो यह स्थिति बाल तथा किशोर अपराध कहलाती है। प्रसिद्ध समाज शास्त्री इलियट एवं उनके साहयोगी मैरिल ने अपराध का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है– ''अपराध एक कार्य है जो कानून द्वारा वर्जित है जिसके कर्ता को मृत्युदण्ड, जुर्माना जेल न्यायालय या सुधारगृह में बन्द जीवन व्यतीत करने के लिए दण्ड दिया जा सकता है।''

परिभाषाए :–

गुड– ''कोई भी बालक जिसका व्यवहार, सामान्य, सामाजिक व्यवहार से इतना भिन्न हो जाए कि उसे समाज विरोधी कहा जा सके बाल अपराधी है।''

हीली– ''वह बालक जो समाज द्वारा स्वीकृत आचरण का पालन नहीं करता, अपराधी कहा जाता है।''

मार्टिन न्यूमोर– ''जो समाज विरोधी व्यवहार तथा सामाजिक विघटन उत्पन्न करता है वह बाल अपराधी कहा जा सकता है।''

बाल अपराध के कारण :–

मेडिन्स व जॉनसन का मत है– ''सामाजिक समस्या के रूप में बाल अपराध में वृद्धि होती हुई जान पड़ती है। यह वृद्धि कुछ तो जनसंख्या की सामान्य वृद्धि के परिणामस्वरूप और कुछ जनसंख्या के अधिक भाग के ग्रामीण वातावरण के बजाय शहरी वातावरण में रहने के परिणामस्वरूप हो रही है।''

बाल अपराध के कारण निम्नलिखित हैः–

1. आनुवांशिक कारण।
2. शारीरिक कारण।
3. मनोवैज्ञानिक कारण।
4. सामाजिक कारण।
5. पारिवारिक कारण।
6. विद्यालय संबंधी कारण।

7. संवाद वाहन के साधन।
8. सांस्कृतिक कारण।

1. आनुवांशिक कारण –

- अपराधी प्रवृत्ति।
- उत्पादक गुण सूत्र।
- शारीरिक रचना।

2. शारीरिक कारण –

- शारीरिक दोष।
- यौनांगो का तीव्र विकास।

3. मनोवैज्ञानिक कारण –

- निम्न सामान्य बुद्धि।
- मानसिक रोग।
- अवरूद्ध इच्छा।
- निराशा।
- ग्रन्थियां।
- संवेगात्मक असंतुलन।

4. सामाजिक कारण –

- साथी।
- अवकाश।
- नागरिक वातावरण।
- गन्दी बस्तियां।
- युद्ध।
- देश का विभाजन।

5. पारिवारिक कारण –

- भग्न परिवार।
- अनैतिक परिवार।
- परिवार की निर्धनता।
- परिवार का वातावरण।
- निरास्कृत बच्चे।
- बच्चों के प्रति दुर्व्यवहार।
- पिता की अनुपस्थिति या मृत्यु।

6. विद्यालय संबंधी कारण –

- स्थिति।
- नियंत्रण का अभाव।
- खेल व मनोरंजन।
- परीक्षा प्रणाली।
- व्यक्तिगत स्कूल।

7. संवाद वाहन के वाहन –

- प्रहसन की पुस्तकें।
- सस्ते उपन्यास व पत्रिकाएं।
- चलचित्र।
- टेलीविजन।

8. सांस्कृतिक कारक –

आधुनिक युग में हमारे जीवन के समान हमारी संस्कृति भी कृत्रिम हो गई है। उसके अर्थ और महत्व का दोष हो गया है। वह वयस्कों किशोरों और बालकों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में असफल हो रही है। अतः बालक और किशोर इससे अपना संबंध विच्छेद करके समाज विरोधी कार्यो में संलग्न होते हुए दिखाई दे रहे हैं। मेडिन्स व जॉनसन के शब्दों में–बिटनिक आन्दोलन संबंध विच्छेद का अधिक पूर्ण रूप करता है।''

(ब) निर्देशन एवं परामर्श :–

निर्देशन का अर्थ मार्ग दिखाना सहायता करना जिससे व्यक्ति यह निश्चित कर सके कि वह अपने उद्देश्य को किस प्रकार से प्राप्त कर सकता है। निर्देशन एक प्रकार की व्यक्तिगत सहायता है जो किसी निपुण व्यक्ति के द्वारा दी जाती है। निर्देशन द्वारा व्यक्ति के अन्दर वह अर्न्तदृष्टि उत्पन्न की जाती है जिसमें वह स्वयं अपनी समस्याओं का समाधान करने में समर्थ होता है। निर्देशन के द्वारा व्यक्ति को अपनी बुद्धि योग्यताओं, क्षमताओं, अभिरूचियों और व्यक्तित्व संबंधी विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त होता है जिससे वह अपने जीवन को अच्छा बनाता है। इस प्रकार निर्देशन व्यक्ति के जीवन के लक्ष्य निश्चित करने में, उसके जीवन में सामंजस्य स्थापित करने में तथा उसकी समस्याओं को सुलझाने में सहायता प्रदान करता है।

10.6 निर्देशन की परिभाषाएं :–

क्रो एण्ड क्रो– ''निर्देशन वह सहायता है जो निपुण परामर्शदाताओं द्वारा किसी भी आयु के व्यक्ति को अपने जीवन के कार्यो को व्यवस्थित करने वाले दृष्टिकोण को विकसित करने, अपने निर्णयों का निश्चित करने तथा अपने उत्तरदायित्वों को वहन करने के लिए दी जाती है।''

जोन्स– ''निर्देशन वह व्यक्तिगत सहायता है जो व्यक्ति को आत्म निर्देशन के विकास में सहायता देती है। यह सहायता व्यक्ति विशेष को अपना व्यक्ति समूह को दी जाती है। इसमें व्यक्ति पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। इसमें व्यक्ति महत्वपूर्ण होता है समस्या नहीं।''

गुड– ''निर्देशन व्यक्ति के दृष्टिकोणों और उसके बाद के व्यवहार को प्रभावित करने के उद्देश्य से स्थापित अर्न्तवैयक्तिक संबंधों की प्रक्रियाप है।''

हसबैंड– ''निर्देशन व्यक्ति को उसके आगामी जीवन के लिए तैयार करने और समाज में समुचित स्थान प्राप्त करने के लिए सहायता देने के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।''

निर्देशन के प्रकार :–

डब्ल्यु. एम. प्रोक्टर ने निर्देशन के निम्नलिखित छः प्रकार बताये हैं –

1. शैक्षिक निर्देशन।
2. व्यावसायिक निर्देशन।
3. समाजिक एवं नागरिक क्रियाओं में निर्देशन।
4. स्वास्थ्य एवं शारीरिक क्रियाओं में निर्देशन।
5. अवकाश काल के सदुपयोग के लिए निर्देशन।
6. चरित्र निर्माण के लिये निर्देशन।

मायर्स ने निर्देशन आठ प्रकार का बताया है –

1) शैक्षिक निर्देशन।
2) व्यावसायिक निर्देशन।
3) स्वास्थ्य संबंधी निर्देशन।
4) नागरिकता संबंधी निर्देशन।
5) नेतृत्व संबंधी निर्देशन।
6) सामाजिक तथा नैतिक निर्देशन।
7) मनोरंजन संबंधी निर्देशन।
8) समाज सेवा संबंधी निर्देशन।

मनोविज्ञान केन्द्र इलाहाबाद ने निम्नलिखित प्रकार के निर्देशन बताये है–

1. शैक्षिक निर्देशन।
2. व्यावसायिक निर्देशन।
3. व्यक्तिगत निर्देशन।

बलकों हेतु निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्व :–

वर्तमान युग में निरंतर होने वाली वैज्ञानिक प्रगति और यांत्रिक विकास बालकों के जीवन में भारी परिवर्तन किये हैं। आज बालक को अनेक जटिल समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। आज बालकों के वैयक्तिक जीवन में सामाजिक जीवन में, शिक्षा के क्षेत्र में और व्यवसाय के क्षेत्र में अत्यधिक जटिलता और विशिष्टता आ गई है जिसके कारण निर्देशन की आवश्यकता बहुत अधिक हो गई है। निर्देशन के

महत्व के विषय में कहा गया है ''सामाजिक मूल्यों के अवमूल्यन, जनसंख्या की वृद्धि मनोरंजन की विविधता शिक्षा के प्रति बदलते हुए दृष्टिकोण सामान्य शिक्षा के विकास तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बदलते हुए दुष्टिकोण के कारण, निर्देशन का महत्व और भी बड़ता जा रहा है। निर्देशन की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से है :–

1. परिवार की स्थिति में परिवर्तन।
2. कार्यो एवं सेवाओं में विशेषीकरण की प्रवृत्ति।
3. सामाजिक जीवन में जटिलता।
4. अवकाश काल का सदुपयोग।
5. व्यक्तित्व के विकास में सहायक।
6. वैयक्तिक विभिन्ताओं का महत्व।
7. शिक्षा की जटिल प्रक्रिया।

इस प्रकार हम देखते है कि आज बालकों के निर्देशन की महती आवश्कता है। कोचर ने निर्देशन के विषय में लिखा है ''व्यक्तियों के लिए समाज बहुत जटिल माता–पिता के लिये समायोजन की समस्या बहुत तीक्ष्ण और विद्यार्थियों के लिये उपयुक्त विषयों के चयन की समस्या बहुत प्रबल हो गई है। इसलिए विद्यार्थियों के उचित समायोजन के लिये विद्यालय में निर्देशन सेवाओं की आवश्यकता है।

1. **शैक्षिक निर्देशन विद्यार्थियों के लिए है :–** विद्यार्थियों के सामने अनेक ऐसी समस्याएं होती है जिनको वह स्वयं सुलझा पता है और न इन समस्याओं के शिक्षक या उसके माता–पिता सुलझा पाते है। इन समस्याओं को सुलझाने में सहायता देने के लिए निर्देशन सेवा के प्रतिशित कार्यकर्ताओं की आवश्यकता पड़ती है।
2. **शैक्षिक निर्देशन शैक्षिक चुनावों के लिए है :–** विद्यार्थियों को अनेक प्रकार के चुनाव करने पड़तें है। उनके सामने विद्यालय, पाठ्क्रम, पाठ्य विषय आदि के चुनाव की समस्या होती है। सबसे पहले उसमें यह चुनना होता है कि वे किस विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करें? फिर उन्हें यह चुनना होता है कि वह कौन सा पाठ्यक्रम ले और किन विषयों को ले? विद्यर्थी स्वयं इन युवाओं को नहीं कर सकते। इस विषय में उनकों शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता होती है।

10.7 विशिष्ट बालकों हेतु निर्देशन एवं परामर्श की आवश्यकता एवं महत्व –

शिक्षा का उद्देश्य शारीरिक और मानसिक रूप से विकलांग बालकों को सामान्य बालकों के साथ बराबर के साझेदार के रूप में जोड़ने का होना चाहिये। उन्हें सामान्य वृद्धि और विकास के लिये तैयार करना और उन्हें जीवन का मुकाबला साहस और आत्मविश्वास के साथ करने के योग्य बनाना चाहिये।

अपंग बच्चों और माता पिता का मार्गदर्शन बहुत महत्वपूर्ण है। इस प्रकार के निर्देशन के लिये विशेषज्ञता पूर्ण ज्ञान की आवश्यकता होती है। सामान्यतः लोग ऐसे विद्यार्थियों के प्रति सहानुभूति दिखाते हैं, जो बालक पर विपरीत मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि अध्यापक ऐसे बालकों के मन को समझने का प्रयास करें और उन्हें उनकी अधिगम समस्याऐं दूर करने में मदद करें। इसके साथ साथ वह सामान्य बच्चों में, ऐसे बच्चों को उनके बराबर समझने के लिये सकारात्मक सोच मन में बैठाऐं।

10.8 शैक्षिक निर्देशन की उपयोगिता :–

1) पाठ्यविषयों के चयन में सहायता करता है।
2) व्यक्तित्व के निर्माण में सहायक है।
3) विद्यालयों मे विद्यार्थियों के समायोजन में उपयोगी।
4) विद्यार्थियों की अध्ययन संबंधी प्रेरणा को प्रोत्साहित करने में उपयोगी।
5) विद्यार्थियों की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के संबंध में निर्णय करने में उपयोगी।
6) विशिष्ट बालकों की समस्या हल करने में उपयोगी।
7) विद्यालयों में अनुशासन स्थापित करने में उपयोगी।
8) अपव्यय एवं अवरोधन को दूर करने में सहायक।
9) बेकारी की समस्या के समाधान में सहायक।
10) पाठ्यक्रम शिक्षण विधि विद्यालय व्यवस्था आदि शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले परिवर्तनों को समझने और उनके अनुरूप कार्य करने में सहायक है।

इकाई सारांश –

प्रत्येक विद्यार्थी एक दूसरे से भिन्न होता है। विद्यार्थियों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है – सामान्य और विशिष्ट।

विशिष्ट विद्यार्थी उनको कहा जाता है जो अपनी योग्यताओं, क्षमताओं, व्यक्तित्व तथा व्यवहार सम्बन्धी विशेषताओं की दृष्टि से अपनी आयु के अन्य औसत अथवा सामान्य बालकों से बहुत भिन्न होते है। ऐसे विद्यार्थी अन्य विद्यार्थियों की तुलना में अपनी विशिष्टता रखते हैं जिसके कारण इनकी गणना उच्च कोटि या निम्न कोटि के विद्यार्थियों में होती है। ऐसे विद्यार्थी मानसिक शारीरिक, संवेगात्मक और सामाजिक दृष्टि से या तो बहुत पिछड़े होते हैं या बहुत आगे निकल जाते हैं।

विशिष्ट विद्यार्थियों में पिछड़े बालक, समस्यात्मक मानसिक रूप से पिछड़े बालक, बाल अपराधी प्रतिभावान बालक आदि शामिल है।

प्रतिभाशाली बालक – वह बालक जो प्रत्येक क्षेत्र में औसत बालक से अधिक तीव्र, बुद्धिमान, शारीरिक स्फूर्ति वाले एवं जीवन में अधिक सफलता पाने वाले होते हैं, प्रतिभाशाली बालक होते है।

पिछ़डे बालक – जो बालक कक्षा का औसत कार्य नही कर पाता और कक्षा के औसत छात्रों से पीछे रहता है उसे पिछड़ा बालक कहते है।

विकलांग बालक – वह बालक जिसमे सामान्य बालको की तुलना में शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक कमी अथवा दोष हो, निःशक्त बालक कहलाता है।

समस्यात्मक बालक –

जिन बालकों के व्यवहार में कोई असामान्य बात होती है जिसके कारण वह समस्या बन जाती है जैसे – चोरी करना, झूठ बोलना।

बाल अपराध – जब बालक तथा किशोर समाज द्वारा निर्धारित नियमों तथा मानदण्डों का उल्लंघन इस सीमा तक करते हैं कि दूसरों को कष्ट पहुंचता है, तो यह स्थिति बाल तथा किशोर अपराध कहलाती है।

निर्देशन एवं परामर्श – निर्देशन व्यक्ति को उसके जीवन में लक्ष्य निश्चित करने में, उसके जीवन में सामंजस्य स्थापित करने में तथा उसकी समस्याओं को सुलझाने में सहायता प्रदान करता है।

पाठगत प्रश्न

प्रश्न 1. निर्देशन का अर्थ लिखिए?

प्रश्न 2. प्रतिभाशाली बालक की विशेषताएं लिखिए

प्रश्न 3. शैक्षिक पिछड़ेपन के कारण लिखिए?

प्रश्न 4. निशक्त बालकों की शिक्षा के लिये किये जाने चाहिए?

प्रश्न 5. शैक्षिक निर्देशन की उपयोगिता लिखिए।

– – – –

अभ्यास प्रश्न

छात्र का नाम – **विषय –**

छात्र का पंजीयन क्र. – **कुल प्राप्तांक**

मूल्यांकनकर्ता के हस्ताक्षर

नाम एवं पता –

नोट : निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लिख कर आंतरिक मूल्यांकन के समय संबंधित संस्था में प्रस्तुत करें। इन्हें मण्डल कार्यालय में भेजने की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न 1. मनोविज्ञान की परिभाषायें लिखिए। (कोई दो)

.....

.....

प्रश्न 2. मनोविज्ञान की शाखाएं लिखिए।

.....

.....

प्रश्न–3 सीखना या अधिगम से क्या अभिप्राय है?

.....

.....

प्रश्न–4 तत्परता का निमय क्या है?

.....

.....

प्रश्न–5 रूचि की एक परिभाषा बताइयें।

.....

.....

प्रश्न–6 रूचि के प्रकार बताइयें।

.....

.....

प्रश्न–7 अभिप्रेरणा के प्रकार बताइये?

.....

.....

प्रश्न–8 अभिप्रेरणा के विभिन्न सिद्धांतों के नाम लिखियें?

.....

.....

प्रश्न–9 स्मृति के अवयवों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

प्रश्न–10 स्मृति की उन्नति के उपायों का वर्णन कीजिए।

.....

.....

प्रश्न–11 व्यक्तित्व की व्याख्या कीजिए।

.....

.....

प्रश्न–12. संतुलित व्यक्तित्व की विशेषताएं लिखिए।

.....

.....

प्रश्न–13. बुद्धि को परिभाषित कीजिए?

.....

.....

प्रश्न–14 बुद्धि कितने प्रकार की होती हैं?

.....

.....

प्रश्न–15 विशिष्ट क्षेत्रों के अभिक्षमता परीक्षण लिखिए?

.....

.....

प्रश्न–16 अभिक्षमता की परिभाषा लिखिए?

.....

.....

प्रश्न–17 सृजनात्मकता को परिभाषित कीजिए ?

.....

.....

प्रश्न–18. सृजनात्मक बालक की क्या पहचान है?

.....

.....

प्रश्न–19 निर्देशन का अर्थ लिखिए?

.....

.....

प्रश्न– 20 प्रतिभाशाली बालक की विशेषताएं लिखिए

.....

.....

————